श्री परमात्मने नमः

आप क्या चाहते हैं?

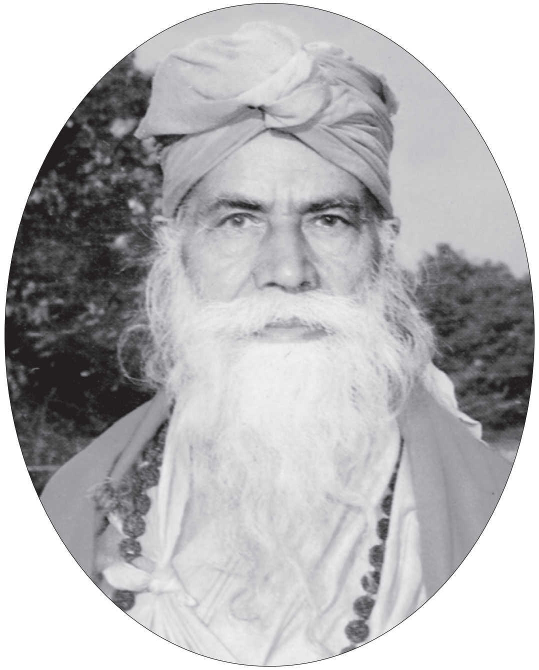

लेखक

साधुवेश में एक पथिक

प्रकाशक

श्री स्वामी पथिक अखिल भारतीय दातव्य सेवा समिति

28, विधान सभा मार्ग, लखनऊ -226 001

आप क्या चाहते हैं?

लेखक

साधु वेश में एक पथिक

प्रकाशक

श्री स्वामी पथिक

अखिल भारतीय दातव्य सेवा समिति

28, विधान सभा मार्ग, लखनऊ -226 001

प्रथम संस्करण :

संशोधित संस्करण : मई 2011

लागत मूल्य रु. 15.00

श्री परमात्मने नमः

कामना-बद्ध बुद्धिमानों के लिये

परमानन्द परमात्मा में ही रहते हुए विभिन्न नाम रूपों में आत्मवत् जिज्ञासु प्रेमी सज्जनों! ज्ञान स्वरूप सद्गुरु एवं संत महापुरुषों के इस सत्य वचन को सर्वप्रथम स्मृति में धारण कर लो- जब तक प्राणी के जीवन में कुछ भी चाह है, तब तक वह बद्ध जीवात्मा है, जिसमें कोई भी चाह नहीं दिखाई देती वह मुक्तात्मा है और जिसकी सत्ता-सान्निध्य से सभी प्राणियों की चाह पूर्ति होती है, वही परमात्मा है।

जिज्ञासु प्रेमियों! जब तक तुम कुछ चाहते हो तब तक चाह के रहते हुए- जब तक वह पूर्ण न हो जाय- चैन न लो। चाह की पूर्ति करते-करते ही यह ज्ञान होगा कि चाह का पेट कभी भरता ही नहीं, उसकी पूर्ति नहीं होती प्रत्युत निवृत्ति होती है। चाह की पूर्ति से सुख मिलता है, जिसका अन्त दुःख में होता है। चाह की निवृत्ति में शांति मिलती है।

चाह गई चिन्ता मिटी मनुवाँ बे परवाह।
जिनको कछू न चाहिये सोई शहन्शाह।।

यदि तुम सदा चैन से ही रहना चाहते हो, अखण्ड शान्ति चाहते हो तो कोई चाह न उठने दो, चाहों का त्याग करते रहो। यदि अपने जीवन को चाह रहित बनाना चाहते हो तो दूसरों की चाहों को पूरा करते जाओ किन्तु उन्हीं चाहों की पूर्ति करो जिनसे किसी अन्य को दुख न हो, किसी के अधिकार का खण्डन न हो।

यदि बार-बार होने वाली भूलों से, हानियों से बचना चाहते हो तो प्रमाद और असावधानी से बचो, सदा सावधान रहकर सुखासक्ति का विरोध करते रहो।

अपनी दुर्बलता दूर करना चाहते हो तो सांसारिक वस्तुओं तथा व्यक्तियों के ऊपर निर्भर न रहो, क्योंकि जितना अधिक तुम परावलम्बन लोगे उतनी ही अधिक दुर्बलता बढ़ेगी; इसलिए स्वावलम्बी होकर

सत्यावलम्बी बनो।

तुम जिस सत्य के योगी अथवा प्रेमी होकर रहना चाहते हो उससे किंचित भी भेद न रखो और जिस जगत प्रपंच से मुकत होना चाहते हो उससे अपनत्व का सम्बन्ध न रखो। असत् के राग का त्याग होने पर ही सत से अनुराग दृढ़ होता है।

चित्त की एकाग्रता, सद्गुणों का विकास और शक्ति सम्पन्नता चाहते हो तो इन्द्रियों समेत मन को मर्यादा में स्ववश रखो। यदि शक्ति संचित करना चाहते हो तो संकल्प रहित होकर रहो।

यदि आनन्द प्राप्त करना चाहते हो तो सुखोपभोग की सीमा को पार करो, इच्छाओं का त्याग करो। तुम जो कुछ होना चाहते हो उसी को अपने भीतर देखो, उसी का चिन्तन करो।

आत्मा के गुणों का विकास चाहते हो तो सत्संग सद्विचार, संयम में कटिबद्ध रहो। अपने पौरुष को सार्थक करना चाहते हो तो अपने जीवन में भूलों को, दोषों को जानो और उन्हें दूर करो। सन्मार्ग में सफलता पाना चाहते हो तो मान, बड़ाई और महत्वाकांक्षा के चक्कर से बचकर चलो।

पवित्र और भला जीवन बनाना चाहते हो तो त्यागी और प्रेमी बनो। अपवित्र और बुरा जीवन बिताना चाहते हो तो रागी और द्वेषी बने रहो। त्याग और प्रेम-विहीन जीवन दीनता और अभिमान के ताप से पीड़ित रहता है।

यदि सर्वश्रेष्ठ दानी होना चाहते हो तो अन्य वस्तुओं के दान के अतिरिक्त मान का दान दो। यदि श्रेष्ठ त्यागी होना चाहते हो तो स्वयं मान का, ममता का त्याग करो, किसी वस्तु को अपनी न मानो।

तुम जिसे पाना चाहते हो तो उसके लिए पूर्ण व्याकुल बनो, उसके बिना कहीं भी चैन न लो। **यह भी स्मरण रखो, अनेक से निराश होने पर ही एक के प्रति पूर्ण व्याकुलता जाग्रत होगी।**

विनाशी सुख का राग मिटाना चाहते हो तो दुख को आने के प्रथम

ही देखो। (जब तक सुख से दुख अधिक न बढ़ेगा तब तक राग न मिटेगा)। भोग का अथवा सुख का वास्तविक ज्ञान होने पर दुख बढ़ता है- यह ज्ञानी महापुरुष की अनुभूति है।

सभी विकार मिटाना चाहते हो तो व्याकुल बनो। व्याकुलता की पूर्णता पर घर में ही वन, भीड़ में ही एकान्त, जीवन में ही मृत्यु की प्रतीति होती है।

सुखी दखा में उन्नति चाहते हो तो दूसरों की सेवा करो। दुखी दशा में शान्ति चाहते हो तो सुख की चाह का अर्थात् दोषों का त्याग करो।

बुद्धि को स्थिर करना चाहते हो तो तृष्णा, क्रोध, भय इन तीनों को हृदय में स्थान न दो। तृष्णा का नाश चाहते हो तो सुख को अनुकूल कदापि न मानो।

क्रोध से बचना चाहते हो तो लोभ अभिमान को छोड़ो और प्रतिकूल की वेदना को क्षणस्थायी मान कर सह जाओ।

भय से मुक्त रहना चाहते हो तो आसक्ति का त्याग करो, क्योंकि आसक्तिवश ही हानि का भय होता है।

यदि तुम अपना हित तथा दूसरों का हित करना चाहते हो तो जिस बल को अविवेकी जन भोग-सुख में व्यय करते हैं, उसी बल से तुम संयम द्वारा आत्मबल बढ़ाओ। इन्द्रियों में रमणना छोड़ो, विनाशी से मोह न रख कर अविनाशी के प्रेमी बनो। यदि यह कठिन दीखता है तो जैसे हो वैसे ही बने रहो।

यज्ञमय जीवन बनाना चाहते हो तो स्वेच्छापूर्वक अपनी शक्ति-सम्पत्ति से दूसरों की सेवा सहायता करते रहो। यज्ञमय जीवन के द्वारा मनोमय लोक को पार करके विज्ञानमय लोक में पहुंच सकते हो और वहीं से परमानन्द का द्वार खुलता है।

पश्चाताप के अवसरों से बचना चाहते हो तो विचारपूर्वक मितभाषी बनो और भूलों से बचो।

अपने बालकों को सदाचारी, सुयोग्य बनाना चाहते हो तो उन्हें

केवल शिक्षा ही न दो, बल्कि स्वयं आचरण करके दिखाओ। छोटे बालकों पर कहने का नहीं, बल्कि करने का प्रभाव पड़ता है। बालक जैसा देखते हैं वैसे ही बन जाते हैं।

यदि अपना नाम मूर्खों की श्रेणी में नहीं रखना चाहते हो तो संयम, सदाचार, सेवा में ही शक्ति का सदुपयोग करो। असंयम और स्वार्थ में सुख न मानो। स्वार्थ-परता में सभी दोषों की पुष्टि और दुर्बलता की वृद्धि होती है।

यदि जितेन्द्रिय शक्तिशाली होना चाहते हो तो वाणी का, क्रोध का, उदर का, उपस्थ का, जिह्वा का और मन का वेग स्ववश में रक्खो अर्थात् जीत लो। इन छः वेगों का दमन करने वाले पुरुष ही संसार में महान पुरुष कहे गए हैं।

यदि शक्ति को दुरुपयोग से बचाना चाहते हो तो अधिक आहार, व्यर्थ कार्य, व्यर्थ वार्ता, अनियमितता, विषयी का संग और विषय-भोग जनित सुखों की लालसा, इन छः का त्याग करो।

संकल्प की सिद्धि चाहते हो तो वितर्कों में शक्ति नष्ट होने से बचाओ (अनेक प्रकार के सुख भोगों के विचार, कर्तव्य पालन की चिन्ता, द्वेषी निन्दक शत्रु के प्रति प्रतिकूल विचार- यह सब वितर्क हैं)।

यदि अपने आस-पास का वातावरण शुद्ध आकर्षण शीतल रखना चाहते हो तो अखण्ड रूप से प्रसन्न रहने का स्वभाव बना लो। प्रसन्नता की ओर सभी देखना चाहते हैं। विकारों से दूर रहकर अखण्ड प्रसन्न रहने से चित्त स्थिर होता है। जहां अन्तःकरण निर्मल और प्रसन्न है वहां दुःख भी सुखमय बन जाता है। निरपेक्ष निर्विकार प्रसन्नता में परमानन्द रूप प्रभु का निवास रहता है।

यदि तुम कल का बिगड़ा हुआ काम सुधारना चाहते हो तो आज का काम शुद्ध विधि से सम्हाल लो, इसी प्रकार यदि पूर्वकाल में बिगड़ी हुई करनी अर्थात् प्रारब्ध सम्हालना चाहते हो तो वर्तमान समय में विवेकपूर्वक तप तथा त्याग एवं सद्गुणों का आश्रय लेकर स्वधर्म, कर्तव्य का पालन

करो। तुम अपने भाग्य के स्वमी इसी कारण हो कि भाग्य नियमाधीन है; उस नियम का ज्ञान प्राप्त करो और अपने भविष्य का सुन्दर निर्माण करते जाओ।

संसार में सर्वत्र शुभ तथा सुन्दर देखना चाहते हो तो अपने विचारों एवं चिन्तन को शुभ और सुन्दर बना लो। संसार के सब पदार्थों का रूप तुम्हारे चिन्तन पर ही निर्भर है।

जिस कठिन कार्य को तुम सुगम सरल बनाना चाहते हो उसका दृढ़ अभ्यास कर लो। अभ्यास का दृढ़ हो जाना ही कठिन को सरल बना लेना है।

यदि तुम अपना शृंगार सर्व-प्रिय होने के लिये करना चाहते हो तो देह को ही सुन्दर वस्त्रों-आभूषणों से सजा कर सन्तोष न करो, तुम शरीर से, वाणी से मन से सबके साथ इतना अच्छा बर्ताव, व्यवहार करो कि तुम्हारे गुणों को, भावों, विचारों को देखकर, सुनकर, तुम्हारा दर्शन, स्मरण करके सबके चित्त प्रसन्न हो उठें। तुम जितनी सुन्दरता से विचार करोगे, तथा सुनोगे, ग्रहण करो या कुछ दोगे, प्रत्येक क्रिया में सुन्दर विधि को साथ रक्खोगे उतने ही तुम स्वयं सुंदर होते जाओगे; तुम्हारे सभी अंग सुन्दर होते जायेंगे।

यदि तुम सहस्त्रों मनुष्यों के बीच में अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करके जनता की ओर से मिलने वाले मान से सुखी सन्तुष्ट होना चाहते हो तो धन तथा अधिकार बढ़ाने की अपेक्षा गीता में वर्णित दैवी सम्पत्ति को बढ़ाकर इन्द्रियों को जीत कर, मन वश में रख कर सुखी संतुष्ट बनो। इन्द्रियों से पराजित होकर मन की दासता में बद्ध रहकर द्वन्द्वों के बीच में नाचते हुए तुम सुख मानो तो यह महान भूल है।

तुम तत्वदर्शी सारावलोकिनी बुद्धि चाहते हो तो समझ लो, ऐसी बुद्धि शास्त्राध्ययन से, तीव्र वैराग्य से, ज्ञानियों के संग से, शुभ कर्मों से, पाप क्षीण होने पर प्राप्त होती है।

तुम ठोकर खाकर गिर जाने का कष्ट नहीं भोगना चाहते हो तो

जहां पैर रखते हो तो देखकर चलो, इसी प्रकार तुम यदि प्राप्त पस्तु की हानि का दुःख नहीं झेलना चाहते हो तो उसकी रक्षा में सावधान रहो, चाहे वह जूता, छाता, छड़ी, धन या वस्त्राभूषण हो, अथवा स्त्री या पुत्र-पुत्री हो। सभी प्रकार की हानियां कभी तो प्रारब्धानुसार होती हैं और प्रायः योग्यता की कमी के कारण या फिर विशेष रूप से असावधानी के कारण होती हैं।

यदि तुम भोग जनित सुख चाहते हो तो अपनी सभी इच्छाओं की पूर्ति के लिए दूसरों की सेवा, सहायता, दान द्वारा पुण्यों का संचय करो।

दैवी सहायता चाहते हो तो कर्तव्य एवं धर्म-परायण बनो। गौरव प्राप्त करना चाहते हो तो परमेश्वर की आज्ञानुसार चलो, प्राकृतिक विधान का विरोध न करो। महत्व प्राप्त करना चाहते हो तो गम्भीरता, दया, सहानुभूति, दीन दुखियों की सेवा आदि सद्‌गुणों को व्यवहार में चरितार्थ करो।

सांसारिक समृद्धि चाहते हो तो प्रकृति की शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करो और उन्हें विधिवत् काम में लाओ। उत्तम पद प्राप्त करना चाहते हो तो चित्त को अचंचल और शुद्ध करो। चित्त शुद्धि के लिए परम पावन परमात्मा का चिन्तन करो और जो कुछ असत्य है उसके त्यागी बनो।

सबके प्रिय होना चाहते हो तो विनयी, मृदुभाषी बनो, मान का त्याग करो। बुद्धिमान विद्वान होना चाहते हो तो वृद्धों की सेवा करो। यदि सद्‌गति चाहते हो तो अहंकार को अभिमान रहित बनाओ, तुच्छ एवं नीच विचारों के आधीन न रहो।

अपने जीवन में पशु प्रकृति की पुष्टि चाहते हो तो स्वादिष्ट भोजन, निद्रा, सुखोपभोग की पूर्ति करते रहो। आसुरी प्रकृति की पुष्टि चाहते हो तो मान, माया तथा विविध इच्छाओं की पूर्ति में रस लेते रहो। मानवी प्रकृति की पुष्टि चाहते हो तो विवेकयुक्त महत्वाकांक्षा की पूर्ति तथा अहंकार की रक्षा करते रहो। दैवी जीवन का विकास चाहते हो तो

राग-द्वेष के त्यागी होकर सत्यानुरागी होकर अपने लिये परम शांति चाहते हुए प्राप्त शक्ति से दूसरों की सेवा करते रहो।

यदि दूसरों को शीतलता प्रदान करना चाहते हो तो अपने भीतर काम, क्रोध, तृष्णा, ईर्ष्या, द्वेष तथा अभिमान और अहंकार रूपी अग्नियों को इतना शांत कर दो कि अंश मात्र भी न रह जायें। यदि निश्चिन्त तथा स्वस्थ होना चाहते हो तो सांसारिक हानि, अपमान, कष्ट, दुःख, वियोग की बातें भूलना सीखो- भूल जाओ। अपने में सामर्थ्य लाना चाहते हो तो सतत अभ्यास करो।

यदि जड़ता पराधीनता से छूटना चाहते हो तो भोगासक्ति वश प्रवृत्ति त्याग करो। भोग-प्रवृत्ति की निवृत्ति चाहते हो तो देहाभिमान को छोड़ो। देहाभिमान को छोड़ने के लिये विरागी बनो और विरागी होने के लिये इन्द्रियों के ज्ञान को भ्रम मानकर तत्व ज्ञान प्राप्त करो। तत्व ज्ञानी होने के लिये बुद्धि-योगी बनो। तुम स्वतन्त्र होने के लिये दूसरों के आधीन नहीं हो।

भोग प्रवृत्ति का त्याग नहीं करना चाहते हो तो पहले सुख की पराधीनता, अंत में शक्तिहीनता और पुनः जड़ता के शासन से छूटने की आशा न करो।

सर्वोत्तम साधन, अन्तिम साधन समझना चाहते हो तो किसी प्रकार चिन्तन न करना ही, सब से मन हटाकर संसार से निराश होकर रहना ही, अन्तिम और उत्तम साधन है; जिससे कि सत्यानुभव अर्थात् आत्मज्ञान होता है।

प्रभु कृपा का आश्रय लेना चाहते हो तो अभिमान का त्याग करो। अभिमान के रहते कोई मानव कृपा का अधिकारी नहीं हो पाता। यदि सुन्दर रूप तथा ऐश्वर्य और आरोग्य जीवन चाहते हो तो अहिंसा व्रत का पालन करो।

विघ्नों का अन्त करना चाहते हो तो भगवान की कृपा दृष्टि प्राप्त करो; यदि यह समझ में न आये तो सन्त महापुरुषों का सत्संग करते

रहो। विश्वास और श्रद्धा ही साधन है।

तुम अपना कल्याण चाहते हो तो कल्पना ही न करते रहो, अपने मन के अनुकूल क्रिया-प्रधान या कुछ भाव-प्रधान साधन की आंशिक पूर्ति में ही रस न लेते रहो, प्रत्युत विरक्त ज्ञानी के बताये हुए तप, व्रत, त्यागपूर्ण कल्याण पथ में चलो और बढ़ते ही जाओ, इसके लिये सत्संग और ज्ञानी की आज्ञा पालन करते रहना ही साधन है।

ज्ञानी की आज्ञा में चलना चाहते हो तो बाहर जाती हुई वृत्तियों को बन्द करो; अन्तरमुखी वृत्ति दृढ़ करके ऊपर की ओर चढ़ो। अपने मन की पूर्ति न चाहो। समर्पण ही साधन है।

यदि सुखोपभोग से तृप्ति की आशा रखते हो तो शक्तिशाली बनो। संयम निर्विकल्पता एवं तप ही शक्ति प्राप्ति का साधन है।

यदि अखण्ड स्वाधीनता का आनन्द प्राप्त करना चाहते हो तो राग के बन्धन से मुक्त बनो- विवेक ज्ञान ही इसकी प्राप्ति का साधन है। यदि अलौकिक दिव्य रस का आस्वादन करना चाहते हो तो अनन्त सौन्दर्य, अनन्त माधुर्य और ऐश्वर्य पूर्ण भगवान के भक्त बनो- अनुराग ही इसका साधन है।

सार तत्व को प्राप्त करना चाहते हो तो मन्थन करो

सदा सत्य को ही बिलोते रहो तुम।
हृदय से विकारों को धोते रहो तुम।।

बड़े से बड़ा अब यही काम करना।
चपल मन को आधीन रखकर विचरना।
दुःखों से न डरना अटल धैर्य धरना।
कहीं भी नहीं पाप पथ में उतरना।
परम पुण्य के बीज बोते रहो तुम।। १।।

कहीं तुच्छ अभिमान आने न पाये।
असत् दृश्य सत् से डिगाने न पाये।
ये सुख दुःख मन को भुलाने न पाये।
समय-शक्ति कुछ व्यर्थ जाने न पाये।

बढ़ो कामना जाल को तोड़ करके।
जो कुछ मन से पकड़ा उसे छोड़ करके।
जियो एक हरि से लगन जोड़ करके।
प्रलोभन से उपराम होते रहो तुम।। ३।।

मिले मुक्ति जिससे, वही ज्ञान सुन्दर।
बढ़े दैवी सम्पति, वह दान सुन्दर।
बहे प्रेम धारा, वह गुणगान सुन्दर।
मिलें जिससे प्रियतम, वही ध्यान सुन्दर।
पथिक त्याग में आगे होते रहो तुम।। ४।।

सुखियों के लिये

यदि तुम सुखी हो और दुख से बचना चाहते हो तो सुखी दशा में ही संयोग का मोह छोड़ दो, लाभ का लोभ छोड़ दो, अधिकार का अभिमान छोड़ दो और इस जीवन से अपनत्व ममत्व छोड़ दो अर्थात् सुख से ही विरक्त हो जाओ और आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न करो।

यदि तुम सुख से विरक्त होना चाहते हो तो उसे स्वयं एकाकी न भोग कर बांटते रहो, और जिसे सुख दो उसके बदले में कुछ भी न लो, क्योंकि तुम अपने कर्तव्य पालन से अधिक कुछ नहीं कर रहे हो। तुमने जो पाया है उसे ही दे रहे हो, अपना कुछ नहीं दे रहे हो- इस भाव से अपने सुख द्वारा दुखियों की सेवा करो।

यदि तुम प्राप्त सुख का वितरण न करोगे तो उसे स्वयं सदा तो रख सकते नहीं, जो मिला है वह जायगा अवश्य ही, तब जाने के प्रथम ही उसे देकर दानी बन जाओ, स्वार्थपरता के स्थान में उदारता बढ़ा लो। संसार का ऐसा कोई सुख नहीं है ही नहीं जिसका अन्त दुःख में न हो, इसलिए अन्त होने वाली वस्तु से अपना सम्बन्ध तोड़ लो तब तुम्हें कदापि दुःख का दर्शन न होगा।

सारे दुःख, सुख की लालसा के कारण होते हैं, सुख की तृष्णा ही सुखद वस्तु तथा व्यक्ति के प्रति लोभी, मोही एवं अभिमानी बनाती है। सुख के कारण ही अनुकूल के प्रति राग और प्रतिकूल के प्रति द्वेष का सम्बन्ध दृढ़ हो जाता है। सुख की आशा ने ही संसार के सम्मुख दीन-हीन बना रखा है। जिस घड़ी से सुख की आशा का त्याग कर दिया जाता है उसी समय दीनता, हीनता की वेदना समाप्त हो जाती है। और वहीं से आशाबद्ध जीव स्तवंत्र होकर सत्यानन्द की ओर मुख कर लेता है।

सुख की आशा से ही पुत्र पिता के, पिता पुत्र के, पत्नी पति के, पति पत्नी के, मित्र-मित्र के, शिष्य गुरु के, सेवक स्वामी के वियोग में रोते-विलखते देखे जाते हैं। सुख की आशा से ही लोभी धन की,

अभिमानी अधिकार की, भोगी इन्द्रियों की शक्ति हीनता से व्यथित होते रहते हैं। केवल वह ही निश्चिन्त, निर्भय, निर्द्वन्द्व रहता है, जिसने सुख की आशा को काट दिया है और प्राप्त सुख को बांटते रहने का व्रत ले रखा है।

दान ही तो तुम्हारे धनी, उदार, दयालु हृदय होने का प्रमाण होगा और दान करते हुए अभिमान रहित होना ही तुम्हारे उच्च ज्ञान का परिचय होगा। यदि तुम महान कार्य करना चाहते हो तो परीक्षाओं से कहीं घबराओ नहीं क्योंकि परीक्षाओं में सफल होकर ही तुम ऊंचे कार्य कर सकने की योग्यता प्रमाणित कर सकोगे। प्रभु जिससे महान कार्य कराना चाहते हैं, उसकी दुर्बलता दूर करने के लिये बार-बार परीक्षा लेते हैं।

तुम अपने सबसे बड़े शत्रु को जीतना चाहते हो तो अहंकार को पहचान लो, काम आदि भयंकर बैरी इसी अहंकार से उत्पन्न होते हैं। विवेकी पुरुष कभी नहीं सोचता कि दूसरे कोई उसकी हानि करते हैं; क्योंकि महान हानि तो अहंकार तथा काम की प्रबलता से ही होती है, जो अपने में ही सदा व्याप्त रहते हैं।

तुम प्रेम-पथ में चलना चाहते हो तो कभी किसी की निन्दा न करो, और शान्ति से विमुख नहीं होना चाहते हो तो किसी से बुराई का बदला लेने की इच्छा न करो। जब तुम वियोग-वेदना, अपमान, अत्याचार, भर्त्सना, निन्दा आदि सहन करते हुए सुखी रह सकोगे तभी प्रेम के पाठ को पूर्ण कर सकोगे। यदि दैवी गुणों की ही अपने जीवन में प्रधानता चाहते हो तो जो बल तुम्हें उत्तेजना और आवेश के समय अंधा बना देता है, उसी बल को समुचित रूप से नियन्त्रित करके सेवा कर्तव्य को पूर्ण करने में लगाओ। इससे दोषों में प्रयुक्त बल, सद्गुणों के रूप में परिवर्तित हो जायेगा।

यदि दीन और अभिमानी नहीं बनना चाहते हो तो स्वेच्छानुरूप वस्तुओं तथा अवस्थाओं में अपने को न बांधो, उन्हें अपनी न मानो। संसार से मिलने वाले सुख की लालसा का त्याग करो। यदि बालक की भांति, दरिद्र की भांति, अनाथ की भांति सुखद वस्तुओं के लिये बिलखते

रोते नहीं चाहते हो तो अपने को शाश्वत आनन्द रूप आत्मा तक बढ़ा ले जाओ, असत् देहादिक जगत की सीमा को पार कर जाओ। यदि ज्ञान-रूपी प्रकाश में सत्य द्रष्टा न बन सके तो ऊपर के जप-तप से आत्महित नहीं होगा। वर्ष के वर्ष सुख-दुःख के बन्धन में बीत जायेंगे, कर्म भोग का भार बढ़ता जायगा। यदि राग द्वेष न मिटा तो जप-तप सांसारिक भोगों में ही बिकता हुआ समझो, इससे दुःखों का अन्त न होगा।

यदि आगे के लिये कर्मों का भोग नहीं बढ़ाना चाहते हो तो माया के, मान के, लोभ तथा क्रोध के पीछे न पड़ो, इनका त्याग करो। क्योंकि इन विकारों के कारण ही अगणित नवीन कर्म बनते जाते हैं। यदि तुम अपने जीवन को भार पीड़ित नहीं बनाना चाहते हो तो अपने एक हृदय में अनेकों को स्थान न दो। एक हृदय है, उसे एक ही के अर्पण करो, एक ही की चाह रक्खो, एक से ही प्रेम करो। एक से प्रेम करना चाहते हो तो अनेक से सम्बन्ध का त्याग करो, क्योंकि प्रेम की पूर्णता त्याग से ही होती है।

दुखियों के लिये

यदि तुम दुखी हो और दुखी दशा से मुक्त होना चाहते हो तो अब उस सुख की लालसा को भली भांति पहचान लो जो तुम्हें बार-बार उसी संयोग की ओर, उसी भोग की ओर प्रेरित करती है, जहां से यात्रा करते हुए इस दुःख की सीमा में आये हो। यहां से यदि फिर सुख की ओर लौटोगे तो कभी न कभी फिर यहीं आना होगा। जितनी बार लौटोगे उतनी ही बार आना होगा; इसके पूर्व भी अगणित चक्कर सुख से दुःख तक लग चुके हैं। अब तुम दुःख की परिधि से बाहर आनन्द धाम में जाना चाहते हो तो पुनः उसी सुख की ओर न लौटो जिसका अन्त दुःख ही होगा।

दुःखी दशा से मुक्त होने का मन्त्र 'त्याग' है। त्याग उसका करो जिसके कारण दुःख को बार-बार बिना बुलाये आना पड़ता है। त्याग करो उस चाह का अर्थात् कामना का जिसकी पूर्ति न होने के कारण दुःख होता

है। त्याग करो उस मोह का जिसके कारण ही सम्बन्ध-वियोग का दुःख होता है। त्याग करो उस अभिमान का जिसके कारण ही अपमान, अनादर का दुःख होता है।

कोई भी दुःखी, त्याग से ही नित्य शांति प्राप्त कर सकता है। दुःख से मुक्त होने के लिये या तो स्वतन्त्र तथा सर्वश्रेष्ठ बन जाओ, या फिर किसी को स्वतन्त्र एवं सर्वश्रेष्ठ न मानो। या तो इस अभिलाषा की पूर्ति हुए बिना चैन न लो या फिर कोई चाह ही न रहने दो; सदा सम, शान्त रहो।

मनुष्य अपने ही द्वारा पुष्ट हुए किसी न किसी दोष से दुखी होता है और विवेक न होने के कारण किसी अन्य को दुःख का कारण बता कर पुनः दोषी बनता है।

तुम दुखी होकर अपने भीतर ही दुःख के कारण की खोज करो क्योंकि दोष के अतिरिक्त कोई अन्य दुःख दाता नहीं है। इसीलिए दोषों के त्याग से अथवा चाह, इच्छा के त्याग से दुःख समाप्त हो जाता है।

दोषों के त्याग से अपना दुःख मिटने के पश्चात् दूसरों को दुःखी देखकर करुणा भाव, दया भाव की प्रबलता से दुःख होता है। यह भी कर्म भोग का रहस्य ज्ञात होने पर मिट जाता है।

दुःखी होकर संसार की ओर न देखो, भगवान् की शरण लो, क्योंकि भगवान् ही दुखियों को चाहते हैं। संसार दुःखी को नहीं चाहता, वह सुखी को चाहता है, अथवा संसार उसे ही चाहता है जो संसार के काम आता है। तुम दुखी दशा में किसी के काम आ सको तो उसकी ओर जाओ; यदि दुःख मिटाना हो तो संसार से विमुख होकर भगवान की ओर जाओ।

सुखी होकर तुम दूसरों को सुख दे सकते हो; परन्तु दुखी होकर दुःख किसी को न दो क्योंकि जो कुछ दोगे वह कई गुना बढ़कर तुम्हीं को मिलेगा। प्रकृति का यह नियम है कि जो कुछ बोया जाता है वह कई गुना अधिक काटने को मिलता है।

दुःख संसार की वस्तुओं से नहीं मिट सकता।

यदि तुम स्थिर और शुद्ध बुद्धि की परीक्षा करना चाहते हो तो

स्मरण रक्खो, जब तक आशा, भय, क्रोध और शोकवृत्ति दिखाई देती है तब तक बुद्धि अशुद्ध है, स्थिर नहीं है।

यदि आनन्द प्राप्त करना चाहते हो तो जब तक इच्छायें न मिटेंगी तब तक आनन्द का द्वार न खुलेगा।

अपना भविष्य सुन्दर तथा शान्तिपूर्ण बनाना चाहते हो तो वर्तमान में योग्यतापूर्वक शक्ति का सदुपयोग करो।

व्यर्थ चिन्तन में समय नष्ट नहीं करना चाहते हो तो अप्राप्त का चिन्तन न करो। चिन्तन उसी का करना चाहिये जो कर्म से नहीं प्राप्त होता है।

जिससे छूटना चाहते हो उसे अपना न मानो, सम्बन्ध न रखो। दोष दूर करना चाहते तो तो व्रत, तप, प्रायश्चित और प्रार्थना- इन चार का समयानुसार विचारपूर्वक आश्रय लो।

यदि विचार को मस्तिष्क का रोग नहीं बनाना चाहते हो तो अनुराग को उसके साथ रक्खो। यदि अनुराग को हृदय पीड़ा नहीं बनाना चाहते हो तो अनुराग के साथ विचार का सहयोग प्राप्त कर लो। यह महापुरुष की सुन्दर सम्मति है।

संयोग की सीमाओं को पार करना चाहते हो तो वियोग से न डरो। लाभ की सीमाओं को पार करना चाहते हो तो हानि से न डरो। सम्मान के आकर्षण से आगे जाना चाहते हो तो अपमान से न डरो।

सुख के बन्धन को तोड़ कर आनन्द की ओर जाना चाहते हो तो दुःख से न डरो। यदि कहीं भी डरोगे तो देख लेना जीवन में तुम कोई ऐसी सिद्धि-सफलता नहीं प्राप्त कर सकोगे जिसे निर्भय महापुरुषों ने प्राप्त किया है।

शासन से मुक्त होना चाहते हो तो उस जीवन को जानो जहां किसी अन्य की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

यदि गरीबी दूर करना चाहते हो तो धन की इच्छा का त्याग करो;

दैवी सम्पत्ति को धारण करो; किसी को धनी न मानो। **यदि तुम दूसरों का अपने प्रति प्रेम चाहते हो तो स्वयं को निर्दोष एवं सुन्दर बना लो।**

अपने को निर्दोष तथा पवित्र बनाना चाहते हो तो जो वस्तु तुम्हारे पास नहीं है उसकी इच्छा न करो, किसी का बुरा न चाहो, जो कुछ दीखता है उसे सत्य मान कर रागी न बनो, अर्थात् निर्लोभी, निर्मोही, निरभिमानी होकर कर्तव्य पालन करो। संसार में जो निर्दोष पवित्र तत्व है उसी का मनन, चिन्तन और ध्यान करो।

स्वाधीन होना चाहते हो तो आन्तरिक शक्तियों को पूर्ण रूप से वश में रक्खो; पराधीन रहना चाहते हो तो उन्हीं शक्तियों के वशवर्ती बने रहो। स्थायी शक्ति तथा शान्ति चाहते हो तो अपने आप पर शासन रक्खो, इन्द्रियों पर, मन पर संयम रक्खो, अहंता को अभिमान से मुक्त रक्खो। सर्वश्रेष्ठ होना चाहते हो तो सर्वश्रेष्ठ का ही मनन, चिन्तन, ध्यान अथवा संग करो।

परमेश्वर के प्रिय होना चाहते हो तो वह प्रभु जिस स्थिति में तुम्हें रखना चाहे, उसी में सन्तुष्ट रहो, प्रसन्न रहो, निश्चिन्त और निर्भय रहो। उनसे उनके अतिरिक्त अन्य कुछ भी न चाहो।

भगवान की दया प्राप्त करना चाहते हो तो उनको याद करो, यह याद उलट कर ''दया'' बन जायेगी। भगवान की दया को अपने द्वार से नहीं लौटाना चाहते हो तो अपने जप, तप, यज्ञ, दानादि शुभ कर्मों के आगे अभिमान को मिटा दो। दया के वे ही जन अधिकारी हैं जो भगवान के सामने विनम्र हैं, दीन हैं, अकिंचन हैं।

तुम चिन्ता रहित एवं निर्भय होना चाहते हो तो किसी वस्तु को अपना मान कर मोही, लोभी, अभिमानी न बनो। केवल परमात्मा ही पर निर्भर होकर रहो।

संसार से उऋण होना चाहते हो तो जिस अवस्था में संसार से जो कुछ लिया है, उसी अवस्था में जब दूसरे को देखो तो प्राप्त का दान करते रहो। संग्रहीत वस्तुओं का सदुपयोग करो, अर्थात् सेवा करते रहो, उसके

बदले में कुछ न चाहो।

अपने समग्र जीवन को परमार्थ सिद्धि में सार्थक करना चाहते हो तो स्थूल शरीर को सबल शुद्ध बनाने के लिये पूर्ण संयमी बनो; **सेवा ही इसका सुन्दर साधन है।** सूक्ष्म शरीर को सबल शुद्ध बनाने के लिये मन से सभी आसक्तियों को छोड़ दो, त्याग और अनुराग ही इसके लिये उत्कृष्ट साधन हैं। कारण शरीर को पवित्र बनाने के लिये अहंकार तथा कर्तव्याभिमान का त्याग करो; **समर्पण ही इस त्याग के लिये सहायक साधन है।**

यदि अपने जीवन को शीतल बनाना चाहते हो तो दोषों को छोड़ो, दैवी गुणों की अपने में परिपुष्टि होने दो। राग और द्वेष से आसुरी सम्पत्ति की पुष्टि होती है। यही जीवन को परिताप से तपाती है। त्याग और प्रेम से दैवी गुणों की जागृति होती है जो कि जीवन को शीतलता प्रदान करती है।

दुःखी होकर सौभाग्यशाली होना चाहते हो तो भगवान की शरण लो, यदि भाग्यहीन रहना चाहते हो तो संसार का आश्रय लेते रहो। दुःख में अपने दोषों को एवं कमी को जानो और उन्हें दूर करो।

यदि तुम उत्तमोत्तम की प्राप्ति चाहते हो तो दुःख से न डरो। जो दुःख से डरता है वह कुछ भी नहीं कर सकता। अपने को नवीन बनाना चाहते हो तो अपने विचारों को सुन्दर, नवीन बनाओ।

यदि अज्ञान मिटाना चाहते हो तो विरक्त ज्ञानी की आज्ञा में चलो। जब तक दूसरे को अपना मानते हो, सत् स्वरूप को भूले हुए हो, दुःखी हो, तब तक ज्ञान की कमी ही समझो।

यदि सत्य को जानना चाहते हो तो अपने को जानो और संसार को जानना चाहते हो तो शरीर को जानो।

किसी ज्ञानी के ज्ञान को नापना चाहते हो तो उसमें निर्वासना, निर्वैरता, निर्भयता, मुदिता, निश्चिन्तता की नाप तोल करके देखो; इस सद्गुणों की पूर्णता में ही सम्भव है।

दरिद्रता दूर करना चाहते हो तो जो कुछ भी तुममें शक्ति है तथा

जो समय है उसका सदुपयोग करो, योग्यतानुसार श्रम करो, कहीं छल कपट तथा चोरी न करो और अप्राप्त का चिन्तन न करो।

परमात्मा का नित्य योग चाहते हो तो परमात्मा का चिन्तन करो, उसे अपने से भिन्न न मानो। वह नित्य प्राप्त है, **उसका अनुभव चिन्तन से ही होगा।** संसार के सुख भोग चाहते हो तो उनका चिन्तन नहीं वरन् सतत श्रम करो, पुण्य कर्म करो। संसार से छूटना चाहते हो तो उसे अपना न मानो और उसकी सेवा करते रहो। सांसारिक सुखों से विरक्त हो जाओ।

शक्ति का विकास चाहते हो तो एकान्त हो जाओ, मौन हो जाओ, निष्क्रिय हो जाओ। शक्ति का ह्रास चाहते हो तो वस्तुओं तथा व्यक्तियों को लेकर भोगी बन जाओ। दुर्बलता दूर करना चाहते तो तो बल का सदुपयोग करो। (कर्तव्य पालन में, सेवा में, सार्थक श्रम में तत्पर रहना ही बल का सदुपयोग है।)

अपने जीवन से भूलें तथा दोष दूर करना चाहते हो तो प्राप्त विवेक का सदुपयोग करो, अर्थात् जो तुम्हें अपने प्रति अप्रिय लगता है, वह दूसरों के प्रति न करो, जो अपने लिए प्रिय लगता है, हितकारी दिखता है, वही दूसरों के साथ करो- यही विवेक का सदुपयोग है। अपने प्रति न्याय करना, दूसरों के प्रति प्रेम करना सर्वहितकारी कर्मों का ही पक्ष लेना, अहितकारी प्रवृत्ति का त्याग करना, प्राप्त विवेक का सदुपयोग है।

आत्मज्ञान चाहते हो तो देहाभिमान से ऊपर उठो और **मन को मौन बनाओ।** मान प्रतिष्ठा चाहते हो तो अपनी शक्ति और सम्पत्ति से कुटुम्ब, जाति, **समाज तथा देश की सेवा करो।**

यदि अपमान से बचना चाहते हो तो अधिकार तथा धन एवं स्त्री के प्रलोभन से अपने मन को दूर रक्खो और निरभिमानी बनो। अहंकार मिटाना चाहते हो तो अपने में कोई वासना न रख कर अपने को परमाधार परमात्मा में देखो, सब कुछ उन्हीं का मानो।

यदि मन को संकल्प रहित करना चाहते हो तो समझ लो, जब तक हीं भी राग रहेगा, किसी के प्रति भी द्वेष रहेगा, साथ ही कुछ भी प्रमाद रहेगा, और कहीं भी असावधानी होगी तो संकल्पों की निवृत्ति नहीं हो सकेगी।

राग मिटाना चाहते हो तो भगवान के अनुरागी होकर सांसारिक संगाभिमान के त्यागी बनो (राग मिटते ही द्वेष मिट जाता है)। कामनावश ही राग होता है। कामना या तो तृप्त होकर निर्वासित हो, या फिर तप से नष्ट हो, या ज्ञान द्वारा त्याग हो, तभी निस्संकल्पता, निरीहता प्राप्त होती है।

गीत

सुना यह हमने गुरु प्रवचन।
तजै जो ममता वह सज्जन।।

ज्ञान में जो साधक जागे, विषय सुख को विषवत त्यागे।
देखता रहे साक्षी बन, जो कुछ भी होता हो आगे।
नहीं वह बंधता कर्ता बन।। सुना यह.....

ज्ञान में पाप मिटा करते, सभी संताप मिटा करते।
कष्ट जो कुछ भी आते हैं, वह सब अपने आप मिटा करते।
प्रेम ही होता जीवन धन।। सुना यह.....

साधकर जो वाणी बोले, बुद्धि साधे अन्तर तोले।
साधकर काम क्रोध के वेग, भेद अपना न कहीं खोले।
सिद्ध हो जाते सब साधन।। सुना यह.....

मन से जो कुछ जाना जाता, बुद्धि से वह जाना जाता।
स्वयं से शान्त मौन होकर, आत्मा पहिचाना जाता।
'पथिक' मिल जाता आनन्द घन।। सुना यह.....

सन्त वचन

जननी जनक बन्धु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा।।
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बांधि बट डोरी।।
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे।।

शक्तिहीन के लिये

यदि तुम शक्तिशाली होना चाहते हो तो जितनी भी शक्ति तुम्हें प्राप्त है उसका सदुपयोग करो, इसी से शक्ति बढ़ती जायेगी। शक्ति के दुरुपयोग से दुर्बलता बढ़ती है, सदुपयोग से दुर्बलता मिट जाती है।

अपनी शक्ति का सदुपयोग करना चाहते हो तो दूसरों की हितप्रद सेवा करो, स्वधर्म निष्ठ तथा कर्तव्य परायण बनो। अधिक शक्ति प्राप्त करने के प्रथम ही यदि तुम थोड़ी सी शक्ति को भोग सुख के लिये व्यय कर दोगे तो क्रमशः उसे भी खोते जाओगे, इसलिये यदि अधिक चाहते हो तो जो कुछ कम है उसका भोग न करते हुए दान करते रहो, वह शक्ति कई गुना अधिक बढ़ जायेगी। शक्ति विकास के लिये व्यर्थ चिन्तन, व्यर्थ चेष्टा का त्याग करो।

कर्तव्य पालन करते हुए, सेवा तथा साधन एवं तप का व्रत लेकर जो कुछ भी प्रतिकूल विरोधी घटना आये सब कुछ सहन करो। सहन करने से शक्ति बढ़ेगी, दुर्बलता दूर होगी।

निवृत्ति के लिये

यदि तुम निवृत्त होना चाहते हो तो जो कुछ स्वीकार कर रक्खा है उसे अस्वीकार कर दो। स्वीकृत ही प्रवृत्ति है, अस्वीकृति ही निवृत्ति है। एक **सन्त के शब्दों में– आंख खोलना प्रवृत्ति है, बन्द रखना निवृत्ति है।**

अनूकूल तथा प्रतिकूल का, सुखद या दुःखद का, जो कुछ भी प्राप्त नहीं है उनका चिन्तन न करो– यही निवृत्ति है। संसार में कुछ भी अपना न मानो, किसी के बनाये कुछ न बनो, **केवल परमेश्वर के होकर रहो** – यही निवृत्ति है।

उन्नति के लिये

यदि उन्नति चाहते हो तो जिस स्थान में जो कुछ ले रहे हो, उसे छोड़कर आगे बढ़ो। सुखासक्ति को छोड़े बिना तुम उच्च स्थानों को प्राप्त नही कर सकते। ध्यान रक्खो! दूसरों से सम्मान का रस लेते हुए तुम नीचे फिसलते जाओगे, भोग सुखों का आस्वादन करते हुए तुम नीचे गिरते जाओगे, सुख से विरक्त होते ही अपने को उच्च सोपानों में चढ़ता हुआ पाओगे।

तुम्हें जो कुछ भी बुद्धि, विवेक, बल, योग्यता प्राप्त है उसी के द्वारा जो कुछ करो, शुभ करो, सुन्दर ही करो, सद्‌गुणों के विकास के लिए करो – यही उन्नति है। जड़ देह से चैतन्य आत्मा की ओर, पराधीनता से स्वाधीनता की ओर, सीमित सुख से असीम आनन्द की ओर, मोह से प्रेम की ओर, जगत् से जगदाधार की ओर बढ़ो – बढ़ते ही जाओ – यही उन्नति का रूप है। श्रम, संयम, सदाचार, सेवा, त्याग और ज्ञान से ही उन्नति होती है।

यदि तुम सबसे अधिक लाभ की बात जानना चाहते हो तो अपने अज्ञान को जानो, अपनी दुर्बलता को जानो। ज्ञान की कमी अज्ञान है। इन्द्रियों से तथा बुद्धि से जहां तक जानते हो, वहां तक ज्ञान की कमी ही है। अल्पज्ञता मिटाना ही ज्ञान है, बद्धि अतीत ज्ञान ही पूर्ण ज्ञान है।

अपने से भिन्न किसी वस्तु या व्यक्ति का आश्रय लेना और असत्य, विनाशी, सुख के पीछे प्राप्त बल को खर्च करना दुर्बलता है।

यदि तुम सर्वोच्च उन्नति करना चाहते हो तो इच्छाओं के आगे अपनी आवश्यकता को जानो। अपनी अवनति तथा बद्ध दशा के कारण को जानो।

जब तक तुम इच्छाओं की पूर्ति का प्रयत्न करते रहोगे तब तक तुम्हें अस्थिर सुख और उस सुख के अंत में दुःख ही मिलेगा जो कि तृष्णा के फल में पतित प्राणियों को सदा से मिलता आया है। तुम इस

तमवेष्ठित तृष्णातल से तभी उन्नति, गति प्राप्त कर सकोगे जब अपने जीवन में सद्विवेक को, वैराग्य को, दोषों के त्याग को, दया, क्षमा, विनम्रता, धैर्य, सन्तोष आदि सभी सद्गुणों को और निष्काम प्रेम की आवश्यकता को जानोगे। जिसे अपनी आवश्यकता का ज्ञान नहीं, वह जीवन को व्यर्थ नष्ट करता रहता है।

यदि तुम समस्त बंधन के दुखों से मुक्ति चाहते हो तो जीवन की **अंतिम अभिलाषा** को जानो और उसे पूर्ण करके मुक्ति प्राप्त करो। अनियमित, अशुद्ध मानसिक प्रवृत्ति का त्याग करो।

मुक्त महापुरुषों के द्वारा ही यह ज्ञात हो सका है कि इच्छा की कभी पूर्ति नहीं होती वरन् निवृत्ति होती है और अभिलाषा की निवृत्ति नहीं होती वरन् सदा के लिए पूर्ति हो जाती है।

यदि तुम परमात्मा को अर्थात् सत्य को जानना चाहते हो तो जहां तक भी असत्य प्रतीत होता है उसे पार कर अकेले असंग हो जाओ। जब तक तुम किसी के साथ मिल कर 'मैं' और किसी को मिलाकर 'मेरा' मानते रहोगे तब तक संग के बंधन से मुक्त नहीं हो सकते और मुक्त सत्य का अनुभव भी नहीं कर सकते। देहाभिमान से मुक्त होने पर आत्मज्ञान होता है, आत्मा का ज्ञान होने पर सर्वात्मा-परमात्मा की एकता की अनुभूति होती है।

विरागी होना चाहते हो तो सुख के अंत में आने वाले दुःख को देखते रहो, संसार में कहीं सुख न मानो।

पाप से बचना चाहते हो तो जो कुछ तुम्हें भले का, बुरे का, ज्ञान है उसका अनादर न करो; अर्थात् अपने सुख के लिए किसी को दुःख न दो, किसी का बुरा न चाहो। अभिमान और सुख की तृष्णा का त्याग करो। विरक्ति के लिये विचार न करो : अपना कौन है?

गीत

मैंने देखा है दृष्टि पसार, यहां कोई अपना नहीं।
जहां तक भी है यह संसार, यहां कोई अपना नहीं।।

अनेकों जन्म ले कितने, यहां माता पिता देखे।
पता भी नहीं है जिनका, बहुत संगी सखा देखे।
वृहद् धन धान्य वैभव भोग के शुभ भाग्य पा देखे।
यहां अपनी प्रशंसा के बहुत कुछ गीत गा देखे।
यही कहना पड़ा हर बार, यहां कोई अपना नहीं।।

यहां पर हर किसी को, नेह नाता जोड़ते देखा।
जहां मन की न हो पाई, वहीं मुख मोड़ते देखा।
उन्हीं को रूठते लड़ते, प्रीत को तोड़ते देखा।
जिसे पकड़ा उसी को, निठुरता से छोड़ते देखा।
तभी मैंने लगाई पुकार, यहां कोई अपना नहीं।।

प्रेमिका और प्रेमिक, प्रेम का जो गान करते हैं।
परस्पर दीखता ऐसा, कि सर्वस्व गान करते हैं।
किन्तु सुख मानते जिसमें, उसी का मान करते हैं।
अनेकों दुःख सह कर, स्वार्थ का ही ध्यान करते हैं।
बता देता है सीमित प्यार, यहां कोई अपना नहीं।।

यहां पर है कोई अपना, तो केवल आत्मा अपना।
वही है विश्व व्यापक, प्रेममय परमात्मा अपना।
प्रकाशक नाम रूपों का, यही विमलात्मा अपना।
उसी के हम, वही है सच्चिदानन्दात्मा अपना।
और जितने भी हैं आधार, यहां कोई अपना नहीं।।

जहां सब दुःख मिट जाते, वही सच्चा ठिकाना है।
वहां पर पहुंच करके, इस जगत में फिर न आना है।
यहां कुछ भी न अपना, मान कर ही मुक्ति पाना है।
अहंता, स्वार्थपरता, मोह, ममता को मिटाना है।
पथिक यह ज्ञानियों का विचार, यहां कोई अपना नहीं।।

चित्त शुद्धि के लिये

चित्त शुद्ध करना चाहते हो तो कभी अशुद्ध का चिन्तन न करके सर्वोपरि शुद्ध का ही चिन्तन करो। भगवद् चिन्तन, चित्त शुद्धि के लिये सर्वोपरि उपाय है। भोगासक्ति जब तक भगवद्भक्ति, सत्यानुरक्ति में न बदल जाय तब तक चित्त अशुद्ध ही समझना चाहिये। सुखोपभोग ही चित्त-शुद्धि में बाधक है, सुखासक्ति के कारण होने वाला अनुकूल के प्रति राग प्रतिकूल के प्रति द्वेष ही चित्त को अपवित्र बनाये रखता है।

ज्ञानी महापुरुषों की आज्ञानुसार शुद्ध व्यवहार से प्राप्त शक्ति के सदुपयोग से, भगवान में अटल विश्वास रखने से चित्त शुद्ध होता है। चित्त-शुद्धि के उपाय जानते हुए भी जब तक कोई असावधान रहता है तब तक चित्त शुद्ध नहीं हो पाता। धर्म को, कर्तव्य को, पुण्य कर्म को, संयम, सदाचार को, शक्ति तथा समय के सदुपयोग को जानते हुए भी न मानना असावधानी है। जिसे कर सकते हैं परंतु करते नहीं, यही असावधानी है- इसे दूर करना ही चित्त-शुद्धि के लिये तत्पर होना है।

निरभिमानी होने के लिये

यदि तुम अभिमान के दुष्परिणाम को देखकर विनम्रता धारण करना चाहते हो तो जो कुछ भी तुम्हारे साथ सुखद वस्तु तथा प्रिय संबंधी

हैं, उन्हें **अपना न मानकर** परमेश्वर को जानो। **अभिमान आने पर बड़े से बड़ा गुण भी दोष बन जाता है।** सांसारिक वैभव-सुख को सत्य मानकर जितना ही विश्वास करोगे, **उतना ही अभिमान प्रबल होगा। जितना ही दूसरों से मान लोगे** उतना ही **अहंकार** बढ़ेगा।

अभिमान की प्रबलता में बुद्धि हर जाती है, बड़े-बड़े अपराध बन जाते हैं। श्रेष्ठता और सद्गुण-सम्पन्नता का अभिमान भी मानव को पतित बना देता है। करने के अभिमान से न करने का दुःख, सन्तजन अधिक हितकारी समझते हैं; तरने के लिये विनम्रता और डूबने के लिये अभिमान। वे कहते हैं, अभिमान सभी शुभ कर्मों को अशुद्ध कर देता है। अभिमान के कारण बड़े-बड़े लोगों से अनेकों भारी-भारी पाप, अपराध बन चुके हैं और वे सत्य से विमुख होते देखे गए हैं। अभिमान छोड़ कर ही तुम संतोषी, उदार, क्षमाशील, कष्टसहिष्णु, गंभीर, विनम्र होकर शांति लाभ कर सकते हो। विनम्र रहने के लिये अपने में कोई गुण देखते हुए दूसरों में दोष न देखो, दूसरों में दोष देखना ही गुण का अभिमान सिद्ध करना है। तुम किसी को तुच्छ, नीच न मानो, पर दोषों की चर्चा भी न करो। गुण भगवान के देखो, दोष अपने देखो और दोषों को दूर करो।

निष्कामी होने के लिये

यदि परमानन्द रूप राम की प्राप्ति के लिये काम के मोह से मुक्त होना चाहते हो तो मन की रुचि कभी न पूरी होने दो। इच्छाओं को पूर्ण करते रहना काम को बलवान बनाना है। राम के मिलन में काम ही बाधक है। काम की उपासना करने वालों को राम नहीं मिला। मन के ऊपर उठ जाना काम राज्य के बाहर होना है। मन के ही द्वारा संसार की वस्तुएं सुंदर सुखद प्रतीत होती हैं। काम का पेट कभी भरता ही नहीं, और परमानन्द राम का पेट कभी खाली होता ही नहीं। जो व्यक्ति काम की तृप्ति चाहते हैं, वे जन्म मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं। काम से पीछा छुड़ाने के लिये सुखद वस्तु

या व्यक्ति से संबंध तोड़ना ही होगा। सुख का संग, संबंध ही तुम्हें भोगी बनाता है। काम यदि परमानन्द राम के चरणों से संबंधित हो जाय तभी इसकी तृष्टि तुष्टि हो सकती है। यह संसार काम को तृप्त करने में समर्थ कभी न हो सकेगा।

काम के स्थान में राम की आराधना करो, तभी दोषों तथा दुःखों से मुक्त हो सकोगे। जहां राम के अतिरिक्त कुछ भी सुन्दर सुखद दिखता है वहीं से काम का राज्य स्थापित होता है। शरीर में आत्मा के सौन्दर्य को सब में रमण करने वाले राम से मिलने के लिये निष्काम होना ही पड़ेगा।

कर्तव्यपरायण शुभ कर्मी के लिये

यदि तुम शुभकर्मी, कुशलकर्मी होकर अशुभ से सदा के लिये मुक्त होना चाहते हो तो वही कर्म करो जिनसे दया, क्षमा, स्नेह, उदारता आदि सद्गुणों की वृद्धि हो।

तुम जो कुछ करो, सेवा भाव से करो और जब कुछ करने से चित्त खाली हो तब भगवान का चिन्तन करो। चित्त से आगे-पीछे का चिन्तन कदापि न करो, अपनी रुचि पूर्ति के लिये ऐसा कुछ न करो जिससे दूसरों को दुःख हो। तुम दूसरों का भय दूर करो, दुःख दूर करने का प्रयत्न करो, किसी को चिन्तित कष्टित देख कर यथाशक्ति सहायता करो। असहाय की, बालक की, विरक्त की, वृद्ध की आवश्यकता को पूर्ण करो।

ध्यान रक्खो! यदि तुम सदा लेते ही रहते तो कृपण हो, दरिद्र हो; यदि लेते भी हो, देते भी हो तो स्वार्थी हो, किन्तु जब लेते कम हो पर देते अधिक हो, तब उदार हृदय के पुरुष हो और जब लेते कुछ नहीं वरन् देते ही रहते हो तब विशाल हृदय के महापुरुष हो।

यदि तुम संसार से उऋण होना चाहते हो तो कर्तव्य पालन में कहीं आलस्य, प्रमाद न करो, जिससे तुम्हारा हित होगा वही कर्तव्य है, तुम्हारा हित उसी कर्म की पूर्ति से होगा जिससे दूसरों का अहित, न हो प्रत्युत लाभ हो। अपने हित के लिये तुमकों कहीं श्रम करना होगा, कहीं कष्ट सहन

करना होगा, कहीं विनम्र रहना होगा, कहीं संतोष एवं धैर्य, तप और त्याग भी करना होगा, इन्हीं सद्गुणों के बल से तुम कर्तव्य पूर्ण कर सकते हो। कर्तव्य पालन का उल्लास, शुभ कर्म करने की आवश्यकता किसी पुण्यवान बुद्धिमान व्यक्ति में ही होती है। अकर्तव्य से, अशुभ कर्म से जो डरता है वही मानव है, जो नहीं डरता वह आसुरी प्रकृति का जीव है और जो कभी कर्तव्य धर्म को, शुभ कर्म को जानता ही नहीं वह पशु-प्रकृति का प्राणी है।

छोटे बालकों में कर्तव्य-अकर्तव्य तथा शुभ-अशुभ को समझने की बुद्धि नहीं जागृत होती। सयाने होनहार बालकों में जबसे कर्तव्य पालन की बुद्धि विकसित होवे तबसे ही ऐसे भाग्यशाली बालकों को माता पिता की आज्ञा पालन करना, गुरुजनों की सेवा करते रहना और व्यर्थ समय न खोकर विद्याध्ययन करना, सदा अपने से अधिक बुद्धिमान सज्जनों के ही संग से संबंध रखना, उनका मुख्य कर्तव्य है। **अच्छे बालक ही श्रेष्ठ मानव हो पाते हैं। छोटे बच्चों का मन स्वच्छ श्वेत वस्त्र की भांति है जो किसी भी रंग में रंगा जा सकता है।**

युवकों के लिये सदा इन्द्रियों के विषयों में मर्यादापूर्वक संयम रखना, शक्ति के द्वारा समुचित श्रम करना, योग्यता बढ़ाते जाना, सुखी अवस्था में दूसरों की सेवा करना, दुःख को धैर्य से भोगते जाना, और परमेश्वर का चिन्तन करना, धन को संचित करने का पक्ष न लेकर दान, धर्म, यज्ञादि शुभ कार्यों में व्यय करते रहना, युवकों का कर्तव्य है। जिन्हें संयम, सदाचारी, विवेकी सज्जनों का संग प्रिय होगा, वही युवक श्रेष्ठ पुरुष हो सकते हैं।

वृद्धों के लिये भी यही कर्तव्य है कि वे गृहस्थी के प्रपंच से दूर रहें। परमात्मा का चिन्तन स्मरण करें और विरक्तों, ज्ञानियों तथा भक्तों के बीच में समय व्यतीत करें। वे गृह संबंधी कार्यों से पूर्णतया मन हटा लेवें। वृद्ध पुरुषों के लिए सबसे सुन्दर सहज साधन यह है कि वे कुछ न करें। कुछ न करने का अर्थ यही है कि इन्द्रियों से, विषयों से विरक्त होकर मन को भी दृश्य-प्रपंच के मनन से मौन कर लें, बुद्धि को भी स्थिर कर रक्खें, इस प्रकार निर्विषय तथा निर्मम-निर्द्वन्द्व, निर्विचार अवस्था में स्थिर होना वृद्धों के लिये योग सिद्धि है। एक संत के शब्दों में, ''करने से भोग

और कुछ न करने से योग स्वतः हो जाता है।''

सर्वचाह रहित होने से सम्बन्ध-बन्धन छूट जाता है, यदि किसी से सम्बन्ध न रहे और आगे के लिए किसी से आशा न की जावे तो वर्तमान में ही परम प्रभु को योगानुभव हो जाता है - ऐसा अनुभव संत का वचन है। सब ओर से निराश होकर सबसे चित्त को हटाकर अंतरात्मा परमात्मा में ही लगा देना तथा रोक रखना - यही भक्ति है। अपनी प्रसन्नता के लिए संसार में किसी वस्तु अथवा व्यक्ति की ओर न देखना किसी से भी कुछ न कहना - यही मुक्ति है। जो वृद्ध शान्ति तथा मुक्ति एवं भक्ति चाहते हो, उनके लिए एक मात्र त्याग और सत्य के ही प्रति अटल अनुराग करना ही कर्तव्य है।

निर्धन और मूर्ख बने रहना चाहते हो तो आलस्य में समय काटते रहो। धनी या विद्वान होना चाहते हो तो कर्तव्य पालन में सदा वर्तमान का सदुपयोग करो। वर्तमान का सदुपयोग करना चाहते हो तो जो कुछ तुम्हारे पास नहीं है या नहीं रह गया है उसका मनन स्मरण न करो और आगे भविष्य में क्या आयेगा, क्या न आयेगा, इसका चिन्तन न करो। इस समय जो कुछ तुम्हारे साथ दिख रहा है, उसे व्यर्थ न जाने दो, जो कुछ तुम कर सकते हो, उसे पूरा किये बिना चैन न लो। यदि तुम मिले हुए का सदुपयोग करोगे तो वह **और अधिक सुन्दर रूप में विशेष मात्रा में प्राप्त होता जायेगा।** यदि प्राप्त शक्ति का, **समय का दुरुपयोग करोगे तो जितना है वह भी छिन जायगौ**

यदि तुम दयालु, क्षमाशील, उदार, संतोषी आदि सभी सुंदर गुणों से जीवन को सुंदरतम बनाना चाहते हो तो एक अहिंसा व्रत को ग्रहण कर लो, अपने सुख के लिये सांसारिक लाभ के लिए किसी को दुःख न दो। अहिंसा ही दया, क्षमा, उदारता, सेवा-परायणता आदि दैवी गुणों की जननी है।

अहिंसा व्रत की पूर्ण सिद्धि चाहते हो तो केवल सत्य, अविनाशी, असीम तत्व को ही अपने लक्ष्य में रक्खो, क्योंकि असत्य से, विनाशी से, सीमित से सम्बन्ध जोड़ने के कारण ही अहिंसा होती रहती है। संसार में जितने संघर्ष हैं, कलह हैं, अथवा युद्ध हैं, जितने भाग में पाप, अनर्थ, अनाचार है वह सब सीमित प्यार क्षणभंगुर सुख तथा असत् पदार्थों से

सम्बन्ध जोड़ने पर ही उत्पन्न हुए हैं। इनसे सम्बन्ध तोड़े बिना हिंसावृत्ति का अन्त हो ही नहीं सकता।

मोही, लोभी, अभिमानी हिंसक होता है। मोह, लोभ, अभिमान आदि दोषों के त्याग से ही कोई अहिंसक हो पाता है। समस्त चाहों के त्यागी, सत्यानुरागी, होकर ही अहिंसा व्रत को पूर्ण कर सकोगे। चित्त की चंचलता मिटाना चाहते तो हो सुखद के प्रति राग, दुःख के प्रति द्वेष का त्याग करो और परमेश्वर में ही चित्त को जोड़े रहो अर्थात् निरंतर चिन्तन करो। परमेश्वर में चित्त को जोड़े रहने के लिए परमेश्वर की महिमा को जानो, सम्बन्ध को जानो।

यदि शान्ति चाहते हो तो शान्ति की चाह को छोड़ो, कुछ भी न चाहो। सुख की चाह ही अशान्त बनाती है।

गीत

महोत्सव नित्य मनायें हम।
प्रेम में प्रभु को पायें हम।।

मोह निद्रा में सोते थे, दुखद स्वप्नों में रोते थे।
मान धन भोगों के पीछे, व्यर्थ ही जीवन खोते थे।
ज्ञान में मन समझायें हम।। प्रेम में...

ज्ञान से मिटती है ममता, ज्ञान से ही आती समता।
ज्ञान से सन्मति गति मिलती, त्याग की तप की भी क्षमता।
ज्ञान में प्रेम बसायें हम।। प्रेम में...

प्रेम ही है जीवन में सार, प्रेम वश प्रभु लेते अवतार।
प्रेम बिन पूर्ण नहीं होते, दान सम्मान भजन उपकार।
प्रेम की महिमा गायें हम।। प्रेम में...

ध्यान से देखें जब तन को, विचारों को चंचल मन को।
नहीं दिखता है कुछ अपना, हटाते ही अपनेपन को।
पथिक चिन्मय हो जायें हम।। प्रेम में....

विद्यार्थी युवकों के लिये

विद्या प्राप्ति के लिए बुद्धि को बलवती बनाना चाहते हो तो इच्छाओं की पूर्ति का पक्ष न लो। जितना ही इन्द्रियों के विषय सेवन में व्यर्थ होने वाली शक्ति को रोकते रहोगे उतनी ही अधिक बुद्धि शक्तिशालिनी होगी। अधिक बोलना, अधिक सोना, अधिक घूमते रहना, मूल्यवान सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों से शरीर को सजाते रहना, अधिक स्वादिष्ट, गरिष्ठ भोजन करना, अपने को धनी मानकर गर्व करना, अपने को निर्धन मानकर खिन्न दुःखी रहना, सामाजिक अथवा राजनैतिक कार्यों में या किसी दल का सदस्य बनकर भाग लेना-यह सब बात विद्यार्थी के अध्ययन में बाधक होती है, शक्ति, समय का अपव्यय होता है।

विद्यार्थी को शरीर से कुछ श्रम अवश्य करना चाहिए (आसन, व्यायाम, दौड़ना आदि)। दीन, दुःखी, निर्बल की सेवा सहायता का अवसर सामने आने पर अपनी शक्ति के अनुसार सहायता अवश्य देनी चाहिए। अपनी आवश्यकता बहुत कम रखनी चाहिए।

प्रचलित सभी धर्मों को समझना, सबके उद्देश्य को और पारस्परिक भेद के कारण को भी जानना चाहिए। **पहले तो सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त करना पुनः अपने हित के लिए** सनातन तत्व को, प्राकृतिक विधान को, आसुरी, मानवी और दैवी प्रकृति के भेद को जानना चाहिए।

विद्यार्थी को प्रथम से ही धैर्य धारण करने का, नम्र होकर रहने तथा मधुरभाषी, मितभाषी होने का संतोष एवं कष्ट सहिष्णुता का अभ्यास बढ़ा लेना चाहिए। वह विद्यार्थी जो स्वभाव से ही परिश्रमी, संयमी, उदार, कर्तव्य परायण, दयावान, विनम्र, गंभीर, विचारशील, दूरदर्शी होते हैं, वही समाज की तथा देश की विश्वासनीय, सम्पत्ति हैं, वही कुछ कुछ ऊंचे काम कर पाते हैं। जितेन्द्रिय होना, संयमी होना विद्यार्थी के लिये अत्यावश्यक है।

युवावस्था के आरम्भ में जैसे-जैसे तीव्र गति से शक्ति बढ़ती है,

वैसे-ही-वैसे इन्द्रियों में अपने-अपने विषयों की ओर चंचलता भी बढ़ती है, मान की, भोग की भूख प्रबल होती है। उस समय जो युवक विद्यार्थी अपनी शक्ति को अधोमुखी (नीचे की ओर विषय पथ से प्रवाहित होने वाली) गति को रोक कर बुद्धि के विकास में ही सदुपयोग करता है अर्थात् शक्ति के विषयाकार प्रवाह को भाव-विकास बुद्धि-विकास में बदल लेता है उसी में वास्तविक ज्ञान शक्ति प्रबल होती है, ऐसा युवक ही वीर पुरुष है। तुम्हारी बुद्धिमत्ता तभी आदर्श और सराहनीय है कि जब तुम पहले परमेश्वर से सम्बन्ध जोड़ लो, फिर संसार से सम्बन्ध स्थापित करो, तभी तुम संसार में बन्धन से मुक्त हो सकोगे।

जिस जीवन का आरंभ सुन्दर, शुभ, विधिवत शक्ति सम्पन्न होता है, उसी का मध्य और अन्त भी सुख शान्ति से पूर्ण हो सकता है। शरीर में संयम के द्वारा पर्याप्त शक्ति संचित होने के प्रथम ही जो युवक विलासी भोगी बन जाते हैं, वे अभागी, जीवन में कुछ ऊंचा कार्य नहीं कर पाते।

विद्याध्ययन करते हुए आदर्श, विवेक, सारावलोकनी बुद्धि, दूरदर्शी दृष्टि, एवं अपने आप का तथा संसार का ज्ञान प्राप्त करने के पहले जो युवक अधिकार एवं सम्मान लाभ की सिद्धि के लिए दौड़ पड़ते हैं वे भी दरिद्र ही रह जाते हैं, कोई महत्वपूर्ण आदर्श पदाधिकारी नहीं प्राप्त कर पाते।

युवावस्था के आरंभ से ही यदि रजोगुण प्रबल हो जाता है, तो प्रथम भोगसुख की कामना प्रबल होती है और उसके कारण एवं परिणाम का कुछ भी ज्ञान, ध्यान न रखते हुए वे युवक सुखद शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के द्वारा काम की तृप्ति करने के लिए भोग-भूमि में कूद पड़ते हैं। कुछ युवक इतने शक्तिशाली होते हैं जो कामना की पूर्ति का पक्ष न लेकर शक्ति के विषयोन्मुखी प्रवाह को स्ववश में रखते हैं, उन्हीं में अधिकार और मान की इच्छा प्रबल होती है। इस अवस्था में आवेश, आवेग, उत्तेजना की प्रबलता रहती है जिसकी पूर्ति के लिए युवक को संघ-निर्माण, संगठन, प्रचार के क्षेत्र में तीव्र गति से कार्य करना, लड़ना, झगड़ना आदि प्रिय प्रतीत होता है। जो युवक कामना तृप्ति तथा अधिकार

एवं मान प्राप्ति की सीमा को तुच्छ समझ कर आगे बढ़ जाता है वही समाज तथा देश के लिए और अंत में अपने लिए हितकर कर्म कर पाता है।

आदर्श मानव होना चाहते हो तो महापुरुष के आदेशानुसार शरीर से आलस्य का त्याग कर परिश्रमी बनो, प्रथम तो सारी शक्ति बटोर कर विद्वान बनो, मन को संयम में रक्खो, इन्द्रियों का दमन करो, बुद्धि में सत्य-असत्य का, धर्म-अधर्म का, कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक प्राप्त करो, मान तथा माया के पीछे मुग्ध होकर न दौड़ो। सर्व हितकारी प्रवृत्ति को स्वीकार करो।

दुराचार से बचना चाहते हो तो जो तुम अपने लिये दूसरों से नहीं चाहते वह दूसरों के साथ न करो। यदि तुम दूसरों के साथ भलाई करना चाहते हो तो स्वयं भले हो लो। जिस प्रकार कोई स्वयं पहले बुरा होकर ही बुराई करता है, उसी प्रकार स्वयं भला होकर ही कोई भलाई कर सकता है।

अपने में दोषों की पुष्टि चाहते हो तो पराये दोषों को देखते रहो। अपने में गुणों की परिपुष्टि चाहते हो तो अपने में दोषों के रहते चैन न लो और किसी गुण के होने का गर्व न करो। यदि बुद्धिमत्ता का परिचय देना चाहते हो तो परार्थी तथा परमार्थी बनो और बुद्धिहीनता का परिचय देना हो तो स्वार्थ तथा भोगासक्ति से चिपटे रहो।

अपने में दिव्यत्व लाना चाहते हो तो पक्के आस्तिक बनो और कर्तव्य पालन में कहीं प्रमाद, आलस्य न करो। स्वतन्त्र होकर रहना चाहते हो तो अज्ञान से, भूल से, सुखासक्ति से अपने को मुक्त कर लो। जो कुछ तुम अधिक मात्रा में पाना चाहते हो उसकी न्यून मात्रा से संतुष्ट न होकर उसका दान करो। यदि तुम असीम सौंदर्य, माधुर्य एवं ऐश्वर्य तथा आनन्द को पाना चाहते हो तो सीमित को देखकर कहीं रस न लो, उससे विरक्त बनो। जीवन को पावन निर्दोष बनाना चाहते हो तो सीमित की ओर न देखो, जो असीम है उसके सम्मुख ही जाओ।

मति को निर्मल बनाना चाहते हो तो संयमी बनो और ज्ञानी

महापुरुषों का संग करो, सदुपदेश सुनते रहो। भोग वृत्तियों का रोकना ही संयम है। जो असत्य से विमुख करके सत्य के सम्मुख कर दे, वही सदुपदेश है। सर्वोत्तम पद की प्राप्ति चाहते हो तो सर्वत्याग करने पर ही प्राप्त होगा। यदि तुम त्याग न करोगे तो तुम ही त्यागे जाओगे।

मृत्यु के दुःख से बचना चाहते हो तो प्राणान्त के प्रथम ही इचछाओं का त्याग कर दो। इच्छाओं के रहते इच्छित वस्तु नष्ट होने से ही दुःख होता है, इसलिए वस्तुओं के रहते उनकी इच्छा को मिटा देना दुःखद मोहपाश से मुक्त हो जाना है।

शाश्वत प्रीति का रस लेना है तो अपने जीवन के स्वामी को जानकर जीवन का भोग करो और नित्य मुक्ति का आनन्द चाहते हो तो संसार के स्वामी को जान कर अपना कुछ न मान कर संसार से विरक्त हो जाओ।

यदि कर्म योगी होना चाहते हो तो कोई कर्म सुख भोग की आशा से न करो। योग का अर्थ अथवा लक्षण जानना चाहते हो तो यह समझ लो कि सब वृत्तियों का अभाव ही योग है। संयोग की सीमा को पार कर जाना योग है, या भोग का अंत ही योग है।

यदि सर्वोपरि ज्ञान चाहते हो तो आत्मज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान है, और सब ज्ञान केवल अभिमान है।

यदि तुम पराये दोषों को नहीं देखना चाहते हो, क्योंकि यह भारी पाप है, तो अपने गुण को न देखो अथवा गुण के अभिमानी न बनो। अपने दोषों को देखो, अपना सबसे बड़ा दोष दूर हो, इसके लिय यह समझ लो कि दूसरे को दोषी मानना और स्वयं अपने आप को भूले रहना, यह सर्वोपरि दोष है। इसे दूर करो।

यदि राग द्वेष के बन्धन से बचना चाहते हो तो जो तुम्हारे अनुकूल है, तुम्हारा कहना मानते हैं, उन्हें अपना प्रेमी मान कर उनका मनन न करो क्येंकि वे जो कुछ करते हैं अपनी संतुष्टि के लिये करते हैं। जो तुम्हारे प्रतिकूल हैं, तुम्हारा कहना नहीं मानते हैं, उन्हें अपना

द्वेषी मानकर उससे घृणा न करो क्योंकि वे जो कुछ अशुभ करते हैं अपने ही लिये करते हैं। तुम अपने अनुकूल, प्रतिकूल, दोनों से ही उदासीन रहो।

यदि तुम अपना जप-तप नष्ट नहीं करना चाहते हो तो क्रोधादि विकारों से अपने को बचाते रहो, क्योंकि जिस प्रकार फूटे हुए घड़े में जल भरने से जल बह जाता है, उसी प्रकार क्रोध, ईर्ष्या, द्वेषादि विकारों से जप-तप क्षीण हो जाता है। यदि तुम अपनी पुण्य रूपी कमाई शीघ्र ही नष्ट कर देना चाहते हो तो मान और भोग की इच्छा को तीव्र गति से पूरी करने लगो, क्योंकि जो जितना अधिक भोगा जाता है उतना ही अधिक क्षीण होता है। यदि तुम अपने प्रारब्धजनित पापों को समाप्त करना चाहते हो तो धैर्यपूर्वक अपने आप आने वाले कष्टों को, दुःखों को भोग डालो। ध्यान रक्खो! भोग से पुण्य क्षीण होते हैं, और दुःख भोग से पाप क्षीण होते हैं।

यदि तुम अपनी प्रकृति में तमोगुणी वृत्तियों को स्थान नहीं देना चाहते हो तो क्रोध, लोभ, हिंसा, याचना, दम्भ, कलह, शोक, मोह, दुःख, किसी के पीछे दीनता, अमर्यादित निद्रा, आलस्य, व्यक्ति से आशा, भय और जड़ता- यह सभी तमोगुणी वृत्तियां हैं- इनसे अपने को बचाओ।

यदि तुम रजोगुणी प्रकृति को स्ववश करना चाहते हो तो समझ लो, स्वर्ग-सुख की कामना, यज्ञादिक व्यापार धन, मान मिलने पर भी असंतोष, गर्व सकाम जप, प्रार्थना, भेददर्शन, भोगासक्ति, युद्धादिक प्रसंगों में उत्साह, जगत में प्रीति, विविध उद्यम, प्रमोद- यह सब रजोगुणी वृत्तियां हैं, इन्हें जीत लो।

यदि तुम सतोगुणी वृत्तियों की भूमिका में रहना चाहते हो तो इन्हें स्मरण रक्खो - शम, दम, क्षमा, विवेक, तप, सत्याचरण, दया, सन्तोष, स्मृति शक्ति, त्याग, वैराग्य, आस्तिकता, अनुचित कर्म में लज्जा, दान, आत्मा में रति - यह सतोगुणी वृत्तियां हैं - इन्हीं में तुम संतुष्ट रहकर परमगति प्राप्त करो।

यदि तुम आधि, व्याधि, उपाधि से छूटना चाहते हो तो -

मानव मोह नींद से जागो।।

सब कुछ छूट जाने के पहले,
दुखद मृत्यु आने के पहले।
निज को बन्धन मुक्त बना लो,
गुरुजन के संग लागो।।
जग में कितने ही सुख देखे,
सुख के पीछे ही दुःख देखे।
अब यदि शान्ति चाहते हो तो,
सब दोषों को त्यागो।।
तन धन को अपना मत जानो,
परमेश्वर को अपना मानो।
चाहे कुछ आये या जाये,
तुम न कभी कुछ मांगो।।
लोभ, मान, माया को तजकर,
परम प्रेममय प्रभु को भजकर।
पथिक तुम्हें योगी होना है,
भोग-भूमि से भागो।।

गृहस्थ के लिये

सद्गृहस्थ, आदर्श गृहस्थ बनकर जीवन में सद्गति चाहते हो तो गृह को, परिवार को, अपना जान कर लोभी, मोही, अभिमानी न बनो। घर को, परिवार को, धन को अपने लिये समझो परंतु अपना न समझो, क्योंकि वे सब संसार की वस्तु हैं तुम्हारी नहीं हैं। जो कुछ तुम्हारे साथ है, वह तुम्हें भाग्यानुसार मिला है, किन्तु वह सदा न रहेगा और तुम स्वयं वर्तमान शरीर के साथ सदा न रहोगे।

तुम्हें जो कुछ सुन्दर अनुकूल सुखकर मिला है वह किसी प्रकार के तप या पुण्य का फल है। अतः जहां तक तुम शुभ, सुन्दर का भोग करते

हो, वहां तक अपने ही पुण्य को क्षीण करते जाते हो। यदि भोग के साथ तुम पुनः तप, दान, पुण्यमय कर्म न करोगे तो एक दिन तुम्हारे पुण्यजनित भोग सुखों का अंत हो जायेगा। ध्यान रखने की बात है कि सुख का भोग करते हुए दूसरों को भी सुख देते रहो जिससे आगे फिर सुख मिले, परंतु दुःख का भोग करते हुए किसी को दुःख न दो, जिससे कि आगे तुम्हें दुःख भोगना पड़े, क्योंकि समस्त दुःख किसी न किसी पाप, अपराध, भूल के ही कारण होते हैं। पाप के फल से ही प्रतिकूलता तथा दुःखद वियोग, हानि, अपमान, अभाव की परिस्थिति आती है।

आदर्श गृहस्थ वही है जो कुछ काल, माया, मान और भोग का रस लेकर शक्ति के रहते ही वनस्थ बन जाये और मृत्यु के प्रथम कामना सहित अहंकार का त्याग करके सन्यासी होकर मुक्त हो जाये। आदर्श सद्गृहस्थ वही है जो मर्यादा के भीतर धर्म-पूर्वक भोग करते हुए लोभ, मोह, अभिमान की वृद्धि नहीं होने देता। जो दानी, संतोषी, विनम्र, विवेकी होता है और भोग से विमुख होकर योगपथ में चलता है। गृहस्थ जीवन में कुछ तुम्हारे साथ शक्ति है, उसके द्वारा सदा वही कार्य करो जिनके द्वारा तुम दयालुता, उदारता, सहिष्णुता, और नम्रता की वृद्धि कर सको। प्राप्त शक्ति का उपयोग उस रूप में न करो जिसमें क्रोध, कठोरता, हिंसा, मोह, ममता, अभिमान, द्वेष आदि दोषों की परिपुष्टि होती हो। शक्ति के द्वारा यथाशक्ति शक्तिहीनों को काम में लाकर अपराधी न बनो।

जो गृहस्थ अपने जीवन में गृह सम्बन्धी चिन्ताओं से, कर्तव्यों से, बन्धनों से मुक्त नहीं हो जाता वह सद्गृहस्थ नहीं, आदर्श धर्मात्मा गृहस्थ नहीं। कहीं न कहीं उसने अकर्तव्य का, अन्याय का आश्रय अवश्य लिया है। कर्तव्यपरायण धर्मात्मा, न्यायी गृहस्थ का सब कार्य ठीक समय पर समाप्त होगा, उसकी अवश्य ही सद्गति, परमगति होगी। मन, वाणी, कर्म से यदि तुम भगवान की ही आराधना करना चाहते हो तो जो कुछ करो उस समय यही सोचो कि हम भगवान के लिये कर रहे हैं। यदि कोई प्रेमी दौड़ना आरंभ करे और यही समझ ले कि ''हम भगवान के लिए दौड़ रहे हैं'' तो उसका दौड़ते रहना भजन हो

जायेगा। यदि कोई यह संकल्प करके बैठ जाय कि हम भगवान के लिए बैठे हैं तो उसका बैठना भजन बन जायेगा। यदि कोई यह निश्चय करके परिवार की सेवा करे कि हम भगवान के लिए ही परिवार की सेवा कर रहे हैं, तो उसकी सेवा भजन बन जायगी। भगवदाकार वृद्धि का दृढ़ होना ही तो भजन आराधना है।

गृहस्थी के प्रपंच से सम्बन्ध तोड़ना चाहते हो तो जो कुछ भी प्राप्त है उसे अपना न मानो, जो कुछ भी सुना हुआ तथा देखा हुआ अप्राप्त है उसकी इच्छा न करो। जगत के प्राणियों को प्रसन्न करना चाहते हो तो उनकी सेवा करो। गुरुदेव को प्रसन्न एवं संतुष्ट करना चाहते हो तो विषयासक्ति को विषय विरक्ति में, स्वार्थ भाव को सेवा में, संबंधियों के चिंतन को भगवद् चिंतन में, देहाभिमान को आत्मज्ञान में बदल दो। चित्त को स्थिर रखना चाहते हो, तो भोग वासनाओं के तथा मोह, लोभ, अभिमान के त्याग को जिस प्रकार हो सके पूर्ण करो। यदि त्याग अपूर्ण रहा तो चित्त की चंचलता का फल भोगते रहो।

गुरुकृपा अथवा भगवद्कृपा का निरंतर अनुभव करना चाहते हो तो सत्संग मिलने पर मिथ्या आग्रह, दुराग्रह न करो, स्वच्छन्द होकर (मनमुखी होकर) कर्म न करो, प्रमाद में शक्ति तथा आलस्य में समय नष्ट न करो और विषयासक्ति का त्याग करो। यदि त्याग नहीं कर सकते हो तो दुःख भोग के लिये तैयार रहो।

अपनी अवनति नहीं चाहते हो तो अनियमित निद्रा, विशेष आहार, वैभव का उन्माद, अमर्यादित भोगविलास, मान-बड़ाई आदि दोषों से सावधान रहो, तुच्छ वस्तु में सुख न मानो, दूसरों का अनिष्ट न करो, लोभवश संचय न करो, बहुतों से मेल व्यवहार न बढ़ाओ, मन इन्द्रियों तथा शरीर के संयम में शिथिलता न आने दो। यदि नहीं कर सकते तो उन्नति की आशा न रक्खो। शारीरिक उन्नति के लिये सदाचार, मानसिक उन्नति के लिये सेवा और आत्मिक उन्नति के लिये त्याग अत्यावश्यक है।

अपनी भलाई चाहते हो तो दूसरों की भलाई करो, अपनी बुराई

करना चाहते हो तो दूसरों की बुराई करो। यदि प्रकृति को सदा शुद्ध रखना चाहते हो तो अपने अहं को शुद्ध रक्खो, उसे पापी, नीच, क्रोधी, लोभी न बनाओ। किसी ईर्ष्यालु द्वेषी क्रोधी से बचना चाहते हो तो उसकी संगत से बचो, न बच सको तो उसके शब्दों का संग न करो अर्थात अर्थ का मनन न करो। ईर्ष्या, द्वेष आदि दोषों से बचना चाहते हो तो मन पर अनुशासन रक्खों, व्यर्थ बातों के लिये कुछ भी न सोचो। अधर्म से बचना चाहते हो तो असत्य से, मद से, अभिमान लोभ आसक्ति से, निर्दयता से दूर रहो। चित्त को अशुद्ध रखना चाहते हो तो कभी शुद्ध पवित्र सत्य का चिन्तन न करो, और चित्त को शुद्ध रखना चाहते हो तो असत, अपवित्र, अनावश्यक तुच्छ का चिन्तन न करो। लोभ मिटाना चाहते हो तो दान देते रहो। मोह मिटाना चाहते हो तो जिसे अपना माना हो उसे परमेश्वर का जानो।

यदि अहंकार बढ़ाना चाहते हो तो संसार की अनित्य वस्तुओं से एकत्व बढ़ाते जाओ। यदि निरहंकार होना चाहते हो तो प्रत्येक वस्तु से अपनत्व का संबंध तोड़कर असंग होकर रहो। सांसारिक वैभाव में विश्वास न करो। जितना अहंकार बढ़ेगा, उतना पाप और दुःख बढ़ेगा। जब तक अहंकार के आधीन रहोगे तब तक सत्य को न जान सकोगे।

पक्के सन्यासी होना चाहते हो तो कामना सहित अहंकार से मुक्त हो जाओ। वासना का निरोध, वाकू संयम, प्राणायाम- यह त्रिदण्ड धारण करो। महाराजा होना चाहते हो तो शक्ति बढ़ाते जाओ, दूसरों की सेवा में उसका सदुपयोग करो, स्वयं सुख भोग की इच्छा न रक्खो। मालदार बनना चाहते हो तो शक्ति का संचय करो परंतु इच्छाएं कम रक्खो। मजदूर बनकर रहना चाहते हो तो शक्ति की मात्रा से इच्छाएं अधिक बढ़ने दो। कंगाल होना चाहते हो तो शक्ति संचित न करो और इच्छायें अधिक रक्खो। कुछ भी नहीं बनना चाहते हो तो स्वतः कुछ न करो और कुछ भी न चाहो, जो सब कुछ का प्रकाशक परमात्मा है, उसी के समर्पित होकर रहो।

सेवा-प्रेमी सेवक सेविकाओं के लिये

अन्तःकरण की शुद्धि के लिये अथवा भगवान की कृपा एवं दिव्य प्रेम तक पहुंचने के लिए या अपने प्रेम पात्र की प्रसन्नता के लिये यदि तुम सेवा करना ही सर्वश्रेष्ठ साधन समझते हो तो पहले भीतर देख लो- यदि कहीं सुखोपभोग की कामना छिपी है, या अर्थ लाभ का लोभ नहीं छूटा है तब तुम सेवा व्रत को अधिक देर तक न निभा पाओगे, क्योंकि सेवा के द्वारा जहां तुम सेव्य को संतुष्ट प्रसन्न देखोगे वहीं अपनी कामना पूर्ति अर्थसिद्धि करने लगोगे और सेवक के स्थान में स्वार्थी की उपाधि लेकर रुक जाओगे। इसलिये सेवा करने के प्रथम ही अपने को सावधान कर लो और संतोष, धैर्य, नम्रता, सहनशीलता तथा प्रसन्नता रूपी दैवी सम्पत्ति को साथ लेकर सेवा आरंभ करो। वास्तविक सेवा वही है जो स्वार्थ को अपने उदर में रख लेती है। सेवा के बदले में यदि कोई कुछ चाहता है तो वह सेवक नहीं प्रेमी है, प्रेमी सेवक वही है जो अपने लिये कुछ नहीं चाहता, इसीलिए सच्चे सेवक को ही संसार का प्यार मिला है। यश, कीर्ति, मान, तो सेवक को चारों ओर से घेर लेना चाहते हैं, यदि सेवक में त्याग का बल एवं उदारता का बल न हो तो वह अपना पीछा नहीं छुड़ा सकता। सेवा वही कर सकता है जो स्वभाव से ही परमार्थी, त्यागी और विवेकी हो, जब तुम्हारे हृदय में अपने सेव्य स्वामी के अतिरिक्त अन्य के लिये स्थान न रहे तभी तुम पक्के सेवक सिद्ध हो सकोगे। जिसकी सेवा करो उसे अपना मानो, चाहे वह व्यक्ति हो, या संसार हो। यदि तुम सांसारिक मोह एवं कामनाओं से छुटकारा चाहते हो तो सेवा ही सुंदर साधन है। अभिमान, लोभ, क्रोध, सुखासक्ति, आलस्य सेवा में प्रबल विघ्न हैं।

देखने में तो बहिन भाई की, पुत्र पिता की, पत्नी पति की, शिष्य गुरु की, व्यक्ति समाज की, नेता देश की और साधु जनता जनार्दन की सेवा ही करते दीखते हैं परंतु सहस्रों सेवक सेविकाओं, प्रेमिकाओं में एक दो व्यक्ति ही ऐसे मिलेंगे जिनकी सेवा को मान, माया, भोग की कामना ने कलुषित न कर दिया हो। किसी की सेवा साड़ियों और आभूषणों के बदले

में बिक जाती है, कोई अपने मन के इच्छित विहार, विलास को सेवा के लिये छोड़ते दीखते हैं, किन्तु कुछ आगे बढ़कर मान बड़ाई तथा अधिकार प्राप्ति के लिये सेवा को विक्रय कर देते हैं। अनुरागी सेवक वही है जो लेता कुछ नहीं, देता ही रहता है। तुम जिनकी सेवा करो उसके द्वारा अपनी रुचिपूर्ति न चाहो किन्तु सेवा या तो निर्दोष की करो या फिर स्वयं दोषरहित होकर करो, या फिर दोष निवृत्ति के लिये ही करो। यदि तुम किसी का प्यार चाहते हो तो उसकी सेवा करो, सच्चे सेवक को ही सब का प्यार सुलभ होता है। जहां से सेवा में संकीर्णता तथा पक्ष आ जाता है वहीं से प्यार में संकीर्णता हो जाती है।

तुम विश्वनाथ भगवान को जानकर उन्हीं के नाते विश्व के प्राणियों की शक्ति भर सेवा करके विश्व का प्यार प्राप्त कर सकते हो। स्मरण रक्खो! तुम जिसके होकर सेवा करोगे वही तुम्हारे मन में निवास करेगा और वही तुम्हारा स्वामी होगा- चाहे वह स्वामी काम हो या फिर परमात्मा 'राम' हो। सच्चे सेवक होने के लिये तुम प्रेम से द्वेष पर, न्याय से अन्याय पर, सेवा से ही स्वार्थ पर विजय प्राप्त करो। दूसरों के हित में ही अपना हित समझो। अपने जीवन के सभी स्तरों को, सभी अंगों को सुन्दर बना लो जिससे कि दूसरों को सुन्दर बनाने में सफल हो सको। जब तुम समाज-संसार की सेवा करना चाहते हो तो सभी को अपना मानो और जब दूसरों की सेवा तथा सुख पाना चाहो तब किसी को अपना न मानो।

सबसे आगे बढ़ना चाहते हो तो सबसे अधिक सेवा करो। सेवा करते हुए यदि तुम सेवा का फल छोड़ते जाओ तो एक दिन तुम भगवान तक पहुंच जाओगे। फल छोड़ते जाओ, सेवा न छोड़ो।

परम सुहृद प्रभु की कृपा का मनन करना चाहते हो तो यह गीत गाओः-

सभी कुछ प्रभु देते जाते आप हैं।
अकथ है जो कुछ दिखाते आप हैं।।

देखता हूं किस तरह कितनी कठिन।
मुश्किलों से भी बचाते आप हैं।।

जहां पर भी हमें गिरते देखते।
वहीं से ऊंचे उठाते आप हैं।।

मोह ममता में फंसे इस जीव को।
जिस तरह भी हो, छुड़ाते आप हैं।।

डूबते देखा जहां दुख सिन्धु में।
किनारे आकर लगाते आप हैं।।

जहां पर मेरे लिये जो उचित है।
युक्तियां सारी सिखाते आप हैं।।

जानता हूं मैं पथिक कितना पतित।
उसे भी पावन बनाते आप हैं।।

साधकों के लिये

यदि दूसरों के अभावों को पूर्ण करना चाहते हो तो पहले अपने अभावों की अपूर्णता मिटा लो और वह स्थान प्राप्त कर लो जहां अभावों की प्रतीति का ही अभाव हो जाता है।

यदि ज्ञान की अपूर्णता मिटाना चाहते हो तो इन्द्रिय, ज्ञान, मन की भ्रांति और बुद्धि की मिथ्या दृष्टि की सीमा को लांघ जाओ, अर्थात् अभी तक जो कुछ दृश्य देखा है, या उसके विषय में सुना है, या जो मान रक्खा है, उसे सत्य न मानो।

यदि प्रेम की अपूर्णता मिटाना चाहते हो तो घृणा, द्वेष, स्वरुचि पूर्ति के आगे बढ़ो अर्थात् इनको हृदय में स्थान ही न दो।

यदि आनन्द की अपूर्णता मिटाना चाहते हो तो सुख-दुःख, उदासीनता, क्षोभ, ग्लानि, हर्ष, शोक अर्थात् परावलम्बी प्रसन्नता की सीमा को पार करो।

यदि शक्ति की अपूर्णता मिटाना चाहते हो तो असंयम, प्रलोभन, पराजय, चंचलता और संकल्पों विकल्पों की सीमा को पार करो।

जीवन की अपूर्णता को मिटाना चाहते हो तो जन्म, वृद्धि, ह्रास,

नाश होने वाले तत्वों की सीमा को पार करो, सदा एक रस रहने वाले अविनाशी नित्य जीवन को जानो। राग द्वेष युक्त जीवन अपूर्ण जीवन है; त्याग, प्रेमयुक्त जीवन पूर्ण जीवन है।

यदि द्वैत भाव मिटाने के लिये एकता पूर्ण करना चाहते हो तो भेद दृष्टि, संघ, संस्था, समाज की सीमा को पार कर उस एक परम तत्व को जानो, जो सबका प्रकाशक है।

यदि त्याग को पूर्ण करना चाहते हो तो अपने लिये कहीं से कुछ भी न चाहो, कामना वासना की सीमा को पार कर जाओ; अपने अतिरिक्त किसी पर पदार्थ को अपना न मानो, सब कुछ भगवान का जानो।

यदि तप को पूर्ण करना चाहते हो तो दुःख में कहीं भी सुख न चाहो। किसी संकल्प की पूर्ति का पक्ष ही न लो, किंचित भी कहीं दुर्बलता न रहने दो। सेवा करते हुए स्वधर्म पालन, इन्द्रिय मन का निग्रह करना तप है, सुख भोग में कभी शक्ति न व्यय करना तप की पूर्णता है। अपमान सहना भी तप है, सम्मान के भोग में तप का क्षय है।

अपने कर्तव्य को पूर्ण करना चाहते हो तो अपने लिये कुछ भी न चाहो, किसी को भी न चाहो, भूतकाल की बातों के मनन में और भविष्य की चिन्ता में समय शक्ति का अपव्यय न करो। वर्तमान कार्य योग्यतापूर्वक, विधिपूर्वक, परिश्रम से करके संतुष्ट होते रहो। अपने ऊपर अपना अधिकार रक्खो।

तुम उत्तम कर्म के ही कर्ता बनना चाहते हो तो ध्यान रक्खो जिस कर्म से सद्‌गुण बढ़े, वही उत्तम कर्म है।

मन को सतोगुणी बनाना चाहते हो तो सतोगुणी आहार करो। आहार का अर्थ केवल उतना ही न समझो जो मुख से सेवन किया जाता है, प्रत्येक इन्द्रिय का भोजन (आहार) है। मन का आहार इच्छाओं भावनाओं की पूर्ति है। बुद्धि का आहार जिज्ञासा की तृप्ति है। सर्वांगों द्वारा सतोगुणी आहार का सेवन करो। शुद्ध आहार से चित्त की शुद्धि, शुद्ध चित्त से ही स्मृतिलाभ और स्मृतिलाभ से विचार संस्कार की ग्रंथियां सुलझती हैं। मुक्ति का पथ सुलभ हो जाता है।

योग की सिद्धि के लिये यदि तुम भोग से बचना चाहते हो तो ध्यान

रक्खो कि दूसरे से सुख पाने का नाम भोग है, भोगेच्छा ही बंधन में डालती है। तुम्हें दूसरों से मिलने वाले सुख से विरक्त होना होगा।

अपने पुण्यों को व्यर्थ नहीं करना चाहते हो तो कभी वृद्ध का, देवता का, आश्रित का, दुखी का, रोगी का, बालक का, त्यागी का, निराश्रित का, गरीब का तिरस्कार न करो। यदि कायरता, दुर्बलता, प्रभाव हीनता से बचना चाहते हो तो दूसरों के साथ बुराई करने से बचो। यदि वीरता, दृढ़ता, साहस, पवित्रता पूर्ण करना चाहते हो तो सबके साथ भलाई करो। बड़े से बड़ा पापी अपनी शक्ति को बुराई से हटाकर भलाई में लगा कर धर्मात्मा पुण्यवान हो सकता है, यह संत का संदेश है।

यदि अपनी योग्यता की कमी का परिचय देना चाहते हो तो अधिकार और मान को चाहो; क्योंकि योग्य पुरुष को, अधिकारी को तो स्वतः ही मान तथा अधिकार मिलता रहता है।

देवताओं की अपने प्रति प्रीति चाहते हो तो अपने निन्दक से अप्रिय न बोलो, प्रशंसक से मीठी वार्ता करके उसे संतुष्ट रखने की चेष्टा न करो, मार खाने पर भी मारने वाले को न मारो, उसका बुरा भी न चाहो।

संसार से विरक्त होना चाहते हो तो उससे मिलने वाले सुख से विरक्त हो जाओ और कुछ भी अपना न मानो। विरक्त पुरुषों का संग करो। भगवान के भजन में ही लगना चाहते हो तो भगवान से ही संबंध रक्खो, अन्य किसी को भी अपना न मानो। संसार से आशा रखते हुए भगवद् भजन पूर्ण नहीं हो सकता।

संसार का अथवा अपने शरीर का, सम्बन्धियों का भजन करते रहना चाहते हो तो भगवान से निराश होते रहो और तन, धन, स्वजन सम्बन्धियों को अपना मानते रहो।

शारीरिक बल का दुरुपयोग करना चाहते हो तो भोगी बने रहो, सदुपयोग करना चाहते हो तो दूसरों की सेवा करो और तप करो।

परमेश्वर की उपासना के लिये सर्वोत्तम स्थान चाहते हो तो वह स्थान तुम्हारा हृदय ही है, वहीं पर उतर कर उनकी एकांत उपासना कर सकोगे।

भगवान से रहने वाले नित्य सम्बन्ध को यदि सदा स्मरण रखना चाहते हो तो बार-बार मनन करो- ''हे प्रभु मैं तुम्हारा ही हूं, यह सब कुछ तुम्हारा ही है''- यह चित्त से चिन्तन करो, ''हे प्रभु तुम हमारे हो''- यह अहं से स्वीकार करो।

यदि तुम स्वामी होना चाहते हो तो जैसे भी हो सके, मन को अपना सेवक बना लो। फिर मन के कहे पर न चलो। यदि दासता में बद्ध रहना चाहते हो तो मन की सेवकाई न छोड़ो।

चिन्ता का त्याग चाहते हो तो जिसे चित्त ने पकड़ रक्खा है उसे छोड़ दो। चाह से मुक्त होना ही चिन्ता से मुक्ति पाना है।

अपने जीवन को सुंदर बनाना चाहते हो तो संसार के काम आते रहो, किन्तु अपने लिये संसार से कुछ न चाहो; असंगता ही जीवन की सुंदरता है। अपने को ही सुंदर बनाना चाहते हो तो भगवान के समर्पित हो जाओ और भगवान से अपने लिये कुछ भी न चाहो। निष्कामता ही अपनी सुंदरता है जो असंग होने पर आती है।

सत्य का अनुभव करना चाहते हो तो सत्यानुभव होने तक कहीं भी चैन न लो, किसी का भी मनन, चिन्तन न करो। एक अनुभवी सन्त का कहना है कि कुछ भी न करो - जब तक अनुभव न हो जाये क्योंकि सत्य का अनुभव वर्तमान में ही होगा।

यदि साधना में सिद्धि तथा शक्ति चाहते हो तो संकल्पों को रोको; विषय वृत्ति का पूर्ण निरोध करो, दृश्य के बिना दृष्टि को स्थिर करो।

मन को पवित्र करना चाहते हो तो सदा पवित्र को ही अपना मानो और उसी का मनन करो। जब तक तुम सांसारिक वस्तुओं में राग रक्खोगे तब तक मन पवित्र हो ही नहीं सकता। द्वेष अवश्य रहेगा और संसार प्रपंच का मनन चिन्तन अवश्य ही होगा।

धर्म परायण होना चाहते हो तो जो कुछ तुम्हारे पास शक्ति तथा सम्पत्ति है उसके द्वारा दूसरों की सेवा करो, यज्ञमय कर्म करते हुए दान दो।

जीवन में विजय प्राप्त करना चाहते हो तो सभी अवस्थाओं में धैर्य

रक्खो, सभी दिशाओं को शिक्षा की भूमि बना लो, भोग सुखों के वश में न रहो, सभी दुखदाई दशाओं से अपने को दूर रक्खो। (मानसिक दुष्प्रवृत्तियों को जीत लेना ही वास्तविक विजय है।)

यदि पतित नहीं होना चाहते हो तो अपने सुखासक्त मन का प्यार दुलार न करो, विवेक पूर्वक संयम रक्खो। भोगों और सुखद वस्तुओं में तुच्छ भाव दृढ़ करो, उन्हें निस्सार और परिणाम में दुःखदायी समझो।

प्रपंच की निवृत्ति चाहते हो तो जो कुछ भी मान रक्खा है, उसे निकाल दो। इन्द्रिय ज्ञान की अस्वीकृति ही निवृत्ति का उपाय है। इन्द्रियों को स्ववश रखना चाहते हो तो सदा सेवा में तत्पर तथा संतुष्ट रहो और सुख त्याग के पीछे दुःख सह कर तपस्वी बनो।

अपने जीवन को सदाचारी एवं शुद्ध रखना चाहते हो तो सतोगुणी स्वल्प भोजन करो, वही कर्म करो जिनसे किसी की सेवा होती हो और किसी का अहित न होता हो, सदा निरासक्त रहो, दोषों का त्याग करो, सन्त सद्गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा रक्खो, उनका संग करते रहो, अहंता एवं ममता दूर करो, प्रीति को कामना से कलुषित न होने दो।

मानव समाज का सुधार करना चाहते हो तो स्वयं सच्चे मानव बनो। सच्चे मानव होने के लिये अपने दोषों को जानो, अपनी कमी को जानो और उसे दूर करो। अपने दोषों को या कमी को जानना चाहते हो तो स्मरण रक्खो, जहां कहीं तुम दुखी होते हो वहीं पर विचार करो, कोई न कोई दोष अथवा कमी का पता अवश्य चलेगा।

योगाभ्यास पूर्ण करना चाहते हो तो वैराग्य दृढ़ करो। ज्ञान की परिवृद्धि चाहते हो तो सत्संग और विचार करो। भजन दृढ़ करना चाहते हो तो विश्वास दृढ़ करो। एक में ही मन को लगा देना अभ्यास है। अनेक से अर्थात् सब ओर से मन को हटा लेना वैराग्य है। असत् को, जड़ चेतन को, जन्म जीवन मृत्यु के रहस्य को जानना ज्ञान है। जिस सत्य को इन्द्रियों से नहीं देख पाते उसे अपने हृदय में अथवा अपने को उस सत्य परमात्मा में मानना ही विश्वास है। मन की प्रेरणा से बचना चाहते हो तो अन्तर की सत्य प्रेरणा के अनुसार चलो।

अपने पर अपना नेतृत्व रखते हुए अपना निर्माण चाहते हो तो

महापुरुषों की आज्ञानुसार चलो, विवेक का आदर करो, सद्शास्त्रों का आदर करो, परस्पर विचार विमर्श का आदर करो। दूसरों के दोष न देखो, अपने गुण न देखो।

कुसंग के प्रभाव से बचना चाहते हो तो जो कोई अनुचित वाक्य तुम्हें कहे तो बुरा न मानो, उसे स्वीकार न करो; मन को असंग रक्खो तो कहने वाले को ही उस कर्म का बन्धन होगा।

भगवान में विश्वास दृढ़ करना चाहते हो तो आशंका, चिन्ता, भय, क्षोभ तथा निरुत्साह की वृत्तियों का वहिष्कार करो। क्योंकि ऐसा कुछ हो ही नहीं सकता जो न होना चाहिये।

परमेश्वर के अनुरागी होना चाहते हो तो वासना का त्याग करो, वासना त्याग के लिये मोह को छोड़ो, मोह छोड़ने के लिये विवेक प्राप्त करो, विवेक प्राप्ति के लिये महापुरुषों का सत्संग करो। जो भगवान से कुछ नहीं मांगता, वही भक्ति का अधिकारी होता है। यदि तुम अपने को ईश्वर का प्रेमी मानते हो तो सुख के लालच वश संसार की वस्तुओं का मोह छोड़ दो और ईश्वरीय-प्रेम के पथ में दुःखों से कदापि न डरो।

भगवद् भजन में मन लगाना चाहते हो तो यह निश्चय दृढ़ करके कि 'भगवान के अतिरिक्त कोई अपना नहीं है' - उन पर ही विश्वास करो और उन्हीं से सम्बन्ध जोड़ लो।

यदि अखण्ड प्रसन्नता चाहते हो तो अपने में ही अपने प्रियतम प्रभु की प्रतिष्ठा कर लो और अपने में ही उनकी उपासना करो। ध्यान रहे! अपने से भिन्न स्थान में प्रियतम प्रभु की स्थापना करने से मन को इधर-उधर आने जाने का अवकाश बना ही रहेगा; अतः वह स्थिरता प्राप्त न हो सकेगी जहां अखण्ड प्रसन्नता रहती है।

प्रियतम भगवान को ध्यान में रखना चाहते हो तो मन को जगत के चिन्तन ध्यान से खाली कर लो। जगत-चिन्तन ही उनके ध्यान में बाधक है। भगवान का ध्यान में न आना प्रेम की कमी का परिचय है। प्रेम की कमी का कारण वे इच्छायें है जिनको तुम पूर्ण नहीं कर पाये, न उनका त्याग ही कर सके हो। भोगेच्छाओं ने ही भगवान से विमुख और संसार के सम्मुख कर रक्खा है।

भगवान से प्रार्थना का उत्तर चाहते हो तो ध्यान रक्खो - अपनी सारी शक्ति लगा देने के बाद सबसे निराश होने पर प्रार्थना सुनी जाती है। शक्ति के रहते प्रार्थना नहीं होती। तुम्हारे लिये जो उचित है, वह पहले से प्रभु जानते हैं।

भगवान की प्रसन्नता चाहते हो तो किसी को दुःख न देने, कपट चोरी न करने, **विनम्र तथा सदा प्रसन्न रहने का मानसिक व्रत ले लो।** मान, माया, भोग-सुख से विरक्त रहकर **भगवान से प्रीति करो।** भगवान की पूजा करना चाहते हो तो सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णवभक्त, हृदयाकाश, वायु, जल, पृथ्वी, आत्मा और सम्पूर्ण प्राणी यही परम प्रभु की पूजा के स्थान हैं। स्मरण, चिन्तन तथा ध्यान और भगवान के नाते प्राणियों की सेवा ही पूजा है। ईश्वर की उपासना करना चाहते हो तो एकमात्र ईश्वर के प्रति पूर्ण अपनत्व का भाव दृढ़ करो। अहं का समर्पण ही उपासना है।

यदि अपने साधन में शीघ्र ही सिद्धि चाहते हो तो सुख की कामना का त्याग करो, बीते हुए का मनन न करो, भविष्य का चिन्तन न करो, व्यर्थ चेष्टाओं का अन्त कर दो, व्याकुलता की शरण लो। यदि भगवान की ओर जाना चाहते हो, उन्हीं से मिलना चाहते हो तो संसार में किसी से आशा न रखते हुए किसी से सम्बन्ध रखते हुए तुम उनसे न मिल सकोगे। सबसे निराश होकर उनकी ओर जा सकोगे। सबसे असंग होकर ही उनसे मिल सकोगे। चाहों का त्याग करो, कहीं भी चैन न लो।

परमात्मा से दूरी मिटाना चाहते हो तो **उनके स्वरूप को जान लो,** फिर किंचित भी दूरी न रहेगी, क्योंकि उनसे मानी हुई दूरी है। संसार से सम्बन्ध मिटाना चाहते हो तो संसार के स्वरूप को जान लो, फिर सम्बन्ध प्रतीत न होगा, क्योंकि संसार का सम्बन्ध माना हुआ है, ऐसा पहुंचे हुए संत का वचन है।

सच्चे हृदय से भगवद् नाम का स्मरण करना चाहते हो तो शरीर से कर्तव्य पालन से पूर्ण श्रम करो। आलसी, प्रमादी, भगवान के नाम में मन को नहीं लगा पाते।

आलोचकों के वाद-विवाद से बचना चाहते हो तो उनके सामने

अपनी निर्बलता स्वीकार कर लो, वस्तुओं के दासत्व से छूटना चाहते हो तो सुखासक्ति का त्याग करो। सुखासक्त रहने तक शासन से मुक्त न हो सकोगे। अपना पक्का हितैषी किसी को बनाना चाहते हो तो अपने चित्त को संयमी बना लो। संयत चित्त से जितना हित होता है उतना किसी सम्बन्धी से नहीं होता।

परमार्थ की सिद्धि चाहते हो तो अनेकों साधनों के पीछे न पड़ कर **जीवन को ही साधन बनाओ।** अविवेकी प्राणियों का जीवन केवल भोग सुख की प्राप्ति का साधन बना रहता है, उसी प्रकार विवेकी मानव अपने जीवन को योग की प्राप्ति का साधन बनाता है, वह अपने सर्वांगों से योग सिद्धि का ही प्रयत्न करता है। साधन के पथ में यदि बाधाओं से बचना चाहते हो तो स्त्री सम्बन्ध से मिलने वाले रस का, स्वादिष्ट भोजन की रुचि का, कुटुम्ब के भरण-पोषण की चिन्ता का, यश, मान की चाह का, मोही, मूढ़ और अभिमानी के संग का त्याग करो।

यदि तुम मन को पारमार्थिक साधना के अनुकूल सूक्ष्म अथवा शुद्ध बनाना चाहते हो तो शुद्ध आहार का ही सेवन करो। आहार उस खुराक को, भोजन को कहते हैं जो क्षुधा (भूख) की तृप्ति के लिए लिया जाता है। क्षुधा अनेकों प्रकार की होती है। जिस प्रकार उदर की क्षुधा अन्न जल से मिटती है, उसी प्रकार रुचिकर अनुकूल सुंदर रूपदर्शन की भूख नेत्रों द्वारा, मधुर शब्द श्रवण की भूख कानों के द्वारा, सुगंध ग्रहण की भूख नासिका के द्वारा, प्रिय स्पर्श की भूख त्वचा इन्द्रिय के द्वारा, रसास्वाद की भूख रसना (जीभ) के द्वारा मिटाई जाती है।

प्रत्येक इन्द्रिय का भिन्न-भिन्न विषय आहार ही है। मनुष्य जिस प्रकार का तमोगुणी, रजोगुणी, सतोगुणी आहार करता है, उसी प्रकार का मन बनता है। अपने मन को हल्का बनाने के लिये साधन भजन के प्रेमी को भोजन भी हल्का, शुद्ध सतोगुणी करना चाहिए, जो शीघ्र पचने वाला हो, रूक्ष न हो, स्निग्ध (चिकना) हो, शीतल हो, मधुर हो, रसयुक्त हो, बलदायक हो जिसके प्राप्त करने से कहीं हिंसा न हुई हो अर्थात् किसी प्राणी का अण्डा, मांस न हो, वही सात्विक आहार है। कुछ फल मेवा तथा शाक उत्तम सतागुणी आहार कहा जा सकता है।

आहार के लिये यह ज्ञान अत्यावश्यक है कि क्या खायें? कब खायें? कैसे खायें? और क्यों खायें? इन चारों प्रश्नों का उत्तर स्मरण रक्खो।

क्या खाओ? सतोगुणी अहिंसात्मक विधि से प्राप्त वस्तुओं का ही सेवन करो।

कब खाओ? अच्छी तरह भूख लगे तभी खाओ।

कैसे खाओ? खूब दांतों से चबाकर मन लगाकर ईश्वर का दिया हुआ मानकर प्रेमपूर्वक शान्त चित्त से खाओ।

किस लिये खाओ? शरीर में शक्ति बनी रहे, जिससे कि सेवा हो सके इसलिए खाओ और दूसरों की प्रसन्नता के लिए खाओ परंतु अधिक अमर्यादित विधि से न खाओ। किसी को रुलाकर न खाओ, अशांत चित्त से हुए, भीतर ही भीतर स्वयं रोते हुए भी न खाओ, किसी भूखे के सामने बिना दिये हुए भी न खाओ, शुद्ध एकांत स्थान में ही भोजन करो। भगवान का स्मरण करते हुए भोजन करो। अन्याय अहिंसात्मक विधि से उपार्जित धान्य भी न लो। जहां पर धर्मात्मा प्रेमी भक्त सज्जन न मिलें वहां प्राण रक्षा मात्र के लिए आहार लो।

परिणाम दर्शी ज्ञानियों का कथन है कि प्राणान्त काल में जिस प्रकार का अन्न जिस कुल का, जिस प्रकार की प्रकृति वाले दाता का अन्न उदर में रहता है, उसी गुण, धर्म स्वभाव वाले कुल में उस प्राणी का जन्म होता है।

जिस प्रकार शरीर की शुद्धि के लिये सदाचार, धन की शुद्धि के लिये दान, मन की शुद्धि के लिये ईश्वर स्मरण आवश्यक है, उसी प्रकार तन, मन, धन की शुद्धि के लिये व्रत, उपवास भी आवश्यक है और व्रत, उपवास की यथोचित जानकारी भी आवश्यक है।

यदि आत्मा और परमात्मा से अभिन्नता चाहते हो तो चिन्तन का त्याग करो, अचिन्त्य होकर रहो (अभिन्नता से ही भक्ति, असंगता से ही मुक्ति सुलभ रहती है)। चित्त को चिन्मय बनाना चाहते हो तो उसका चिन्तन करो जो उत्पत्ति विनाश से रहित हो, जिसमें जड़ता न हो और जो तुम से किंचित भी दूर न हो। सार्थक चिन्तन से अचिन्त्यता प्राप्त होती है।

वस्तु, व्यक्ति, अवस्था तथा भूत भविष्य का चिन्तन व्यर्थ चिन्तन है।

यदि ध्यानस्थ रहना चाहते हो तो चित्त को विषय चिन्तन से मुक्त कर लो। विषयों से दृढ़ विरक्त होने पर ही ध्यानस्थ हो सकोगे। समाधिस्थ रहना चाहते हो तो स्वयं नित्य तृप्त रहकर प्रज्ञा को स्थिर कर लो। प्राप्त की प्रशंसा न करो और अप्राप्त का चिन्तन न करो। तत्व ज्ञान रूपी अग्नि में सब वासनाओं को जला दो, चित्त से कर्तापने का भाव मिट जाना ही उत्तम समाधि है। चित्त का चिन्तन रहित होकर चिन्मय हो जाना ही समाधि है। कामनाओं का बहिष्कार किये बिना यह समाधि सुलभ नहीं होती।

यदि तुम नित्य-मुक्ति चाहते हो तो अहंभाव और जगत् दृश्य के अत्यन्त असत् होने का अभ्यास दृढ़ करो। सबसे असंग हुए बिना मुक्ति का अनुभव नहीं हो सकता। अपने में इच्छा और अपना संकल्प ही अपने को बांधता है, सभी इच्छाओं, संकल्पों का त्याग ही मुक्ति है। जितनी विरक्ति होती जाती है उतने से ही मुक्ति मिलती जाती है। विरक्ति बिना निवृत्ति नहीं, निवृत्ति बिना मुक्ति नहीं।

अहंभाव मिटाना चाहते हो तो सर्व प्रकाशक आत्मा का ही चिन्तन करो। यदि तुम अपने को जानना चाहते हो तो जो ज्ञान स्वरूप शक्ति है वही तुम्हारा स्वरूप है। देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि के द्वारा किसी भी वस्तु तथा व्यक्ति में जिसे तुम खोज रहे हो वही तुम्हारा स्वरूप है। प्रमाद से रहित निरपेक्ष आनन्द ही तुम्हारा स्वरूप है। आवरण के कारण तुम्हारा दिव्यत्व ढका हुआ है।

यदि परमेश्वर परमात्मा से नाता जोड़े रहना चाहते हो तो तन, धन तथा कुटुम्ब-परिवार, ऐश्वर्य वैभव आदि जो कुछ भी तुम्हें मिला है, जो कुछ भी शुभ, सुंदर, हितकारी दिखाई देता है, उसे अपना न मानकर परमेश्वर का जानो और केवल परमात्मा को ही अपना परमाधार मानो। उनसे नाता जोड़े रहने के लिये मन को मौन रखने का अर्थात् विकल्प और संताप (नाना प्रकार की वह प्रतिकूलता जिससे मन तपायमान होता है) से रहित होकर रहने का अभ्यास दृढ़ करो।

परमात्मा से नाता तोड़े रहना चाहते हो तो परमेश्वर की सृष्टि में

अपनी सृष्टि रचकर मोही अभिमानी, लोभी बने रहो। यदि मनोराज्य मिटाना चाहते हो तो सच्चे प्रभु के प्रेमी बनो और उनके विरह में कहीं भी चैन न लो, या फिर निरन्तर सर्व प्रकाशक आत्मा का चिन्तन करते रहो और संसार की सेवा करो। **यदि सत्स्वरूप का ज्ञान चाहते हो तो शरीर आदि वस्तुओं को अपनी न मान कर सबसे असंग होकर इन्द्रियों को विषय विमुख तथा मन को मौन करो। जब तुम्हारे सामने कोई विषय-दृश्य न होगा, तब स्वरूप का अनुभव होगा।**

अपने प्रेमास्पद का नित्य योगानुभव चाहते हो तो अहं में अर्थात् अपने में ही प्रेमास्पद को देखो, **प्रेमास्पद में ही अपने अहं को देखो** – यही नित्य **योग की सिद्धि का साधन** है। जगद् दृश्य के संयोग का वियोग हुए बिना योग नहीं हो पाता।

रमणीय सुन्दर प्रतीत होने वाली सांसारिक वस्तुओं से यदि तुम निरासक्त, विरक्त होना चाहते हो तो दूरदर्शी बुद्धि बनाओ और संयोग में ही वियोग को देख लो, जीवन में अचानक आने वाली मृत्यु को देखो, समझ लो जो कुछ भी दीखता है वह सब मिट रहा है। ध्यान रक्खो! कोई वस्तु तभी तक सुन्दर, मोहक, रम्य प्रतीत होती है, जब तक उसकी लालसा है और लालसा तभी तक है जब तक उसमें सुख की प्रतीति है अथवा सुखोपभोग की तृष्णा है; अतः उस तृष्णा का ही त्याग करो।

यदि तुम स्थायी शान्ति चाहते हो तो अस्थाई अर्थात् सदा न रहने वाले सुख की कामना को छोड़ दो और परमेश्वर की तथा जगत की प्रत्येक वस्तु के साथ व्याप्त व्यवस्था के साथ मन का मेल रक्खो, **सबके साथ सभी अवस्थाओं में शान्ति का ही बर्ताव करो।** ऐसा कुछ न चाहो, ऐसा कुछ न करो जिससे अशांति होती है।

यदि तुम अशांति चाहते हो तो परमात्मा के अतिरिक्त संसार की समग्र सम्पत्ति-शक्तियों के उपभोग में रस लेते रहो।

परमात्मा से मानी हुई दूरी और संसार से माना हुआ सम्बन्ध मिटाना चाहते हो तो **चाह को मिटा दो। चाह मिटते ही** मानी हुई दूरी और माने हुए **सम्बन्ध का अन्त हो जाता है।**

जीवन में ही जीवन की सार्थकता देखना चाहते हो तो सब प्रकार की **चाहों का अन्त कर दो,** क्योंकि चाहों की समाप्ति में ही मुक्ति का आनन्द अनुभूत होता है।

आत्मा में अन्तर्निहित अनन्त शक्ति सामर्थ्य तथा अनन्त ज्ञान को जागृत करना चाहते हो **तो मन को मौन करके बुद्धियोगी बनो। सत्संग और विचार का आश्रय लेकर बुद्धियोगी होने पर आत्मा के गुण विकसित होते हैं। सुखोपभोग ही शाश्वत योग में बाधक है,** बुद्धियोगी होने पर भोग का बन्धन टूटता है।

निरंतर प्रभु की कृपा का अनुभव करना चाहते हो तो प्रभु के होकर रहो, सब कुछ के पीछे उन्हीं का हाथ देखो।

चित्त को भगवद्-चिन्तन में तल्लीन रखना चाहते हो तो विषय-चिन्तन को मिटा दो। योग की पूर्णता चाहते हो तो भोग से पूर्ण विमुख हो जाओ।

स्वार्थ के पाप से मुक्त होना चाहते हो तो समग्र शक्ति को सेवा में लगा दो। अविचार पूर्वक होने वाले दृष्कृत्यों के दुष्परिणाम से शीघ्र छूटना चाहते हो तो तप करो। (कर्तव्य पालन तथा सेवा करते हुए सुख के स्थान में दुःख का स्वागत करना तप है।)

समाज के नेता होना चाहते हो तो भोग, कामना, वैर तथा संग्रह से रहित हो जाओ। संयमी होना चाहते हो तो परिश्रमी बनो। विलासी बनना चाहते हो तो आलसी होकर बैठो। श्रम में संकल्पों के लिये अवकाश नहीं रहता। आवश्यक संकल्प पूर्ण करना, अनावश्यक उठने न देना, यही सुन्दर संयम है।

यदि कलह और क्षोभ से बचना चाहते हो तो दूसरों के कर्तव्य को अपना अधिकार न मानो। अधिकार का अभिमानी अधिकार पूर्ति होने पर रागी बनता है, और पूर्ति न होने पर कलह, क्रोध तथा द्वेष करता है।

जीवन का सर्वोपरि उद्देश्य पूर्ण करना चाहते हो तो प्राप्त का सदुपयोग करो, वासनाओं, भोग कामनाओं का त्याग करो, आगे पीछे का मनन चिन्तन न करो; एक समय में एक ही कार्य करो और करते समय पूरी शक्ति लगा दो; कार्य के पश्चात् पुनः उससे सम्बन्ध तोड़कर पूर्ण

विश्राम करो, या आत्मा का चिन्तन करो।

तुम अपनी साधन स्थिति की पूर्णता, अपूर्णता की मापतौल करना चाहते हो तो यह देखो कि तुम्हारे हृदय में कितनी प्रबल चाह है; चाह का पता व्याकुलता की मात्रा से चलेगा। कितना उग्र तप है– इसका पता कष्ट सहिष्णुता से चलेगा। कितनी प्रगाढ़ श्रद्धा है– इसका ज्ञान आज्ञा पालन की तत्परता से होगा।

कितना उत्कृष्ट त्याग है– इसका अनुभव शांति स्थिरता से होगा। कितना अधिक प्रेम है– इसका बोध त्याग को देखकर होगा। कितना उच्च ज्ञान है– इसका परिचय समदर्शिता से होगा। परम प्रभु में कितनी निर्भरता है– इसका पता निर्भयता से चलेगा। कितनी सुदृढ़ आस्तिकता है– इसका अनुभव निश्चिन्तता से होगा। कितनी प्रगाढ़ भक्ति है– इसका ज्ञान अभिन्नता को देखकर होगा। कहां तक मुक्ति मिली है– इसका बोध असंगता से होगा। कितनी अधिक कृपा है– इसका परिचय निरपेक्ष प्रसन्नता को देखकर होगा। कितना गहरा प्यार है– इसका ज्ञान सेवा को देखकर होगा। कितनी प्रगाढ़ प्रीति है– इसका पता गम्भीर चिन्तन से चलेगा। कितना उत्कृष्ट विराग है– इसका ज्ञान सतत् उदासीनता को देखकर होगा। कितना निरभिमानी हृदय है– इसका पता अडिग विनम्रता के द्वारा चलेगा। कितनी निर्लोभता है– इसका ज्ञान स्थिर सन्तोष को देखकर होगा। मन कितना मोह रहित हो चुका है– इसका अनुभव तटस्थता को देखकर होगा। कितनी निष्कामता है– यह तो निस्पृहता ही बता सकेगी। कितना उदार हृदय है– यह दान की मात्रा दिखा सकेगा। कितनी अधिक दया है– यह अहिंसात्मक प्रवृत्ति ही स्पष्ट कर सकेगी। कितनी अधिक शक्ति है– इसका ज्ञान कर्तव्य पालन में श्रम को देखकर होगा। कितनी अधिक दूरदर्शिता है– इसका अनुभव विरक्ति अथवा त्याग को देखकर होगा। कितनी सुन्दर योग्यता है– इसका परिचय प्रत्येक कार्य करने की सुन्दर विधि को देखकर होगा। कितना संयमी जीवन है– यह शरीर तथा तन की आरोग्यता देखकर होगा। कितना पुण्यवान कोई पुरुष है– यह उसकी सभी इच्छाओं की पूर्ति और उनकी निवृत्ति को देखने से विदित होगा।

गीत

हर शै में हर एक शान में भगवान तुम्हीं हो।
हर जान में, बे-जान में भगवान तुम्हीं हो।। १।।

ईसाई, सिक्ख, बुद्ध, यहूदी, वो पारसी।
हिन्दू में, मुसलमान में, भगवान तुम्हीं हो।। २।।

गिरजा हो, या मन्दिर हो, मसजिद हो, या समाधि।
हर दीन में, ईमान में, भगवान तुम्हीं हो।। ३।।

वेदों में, पुराणों में, गुरु ग्रन्थ तन्त्र में।
उस बाइबिल, कुरान में, भगवान तुम्हीं हो।। ४।।

पण्डित हो, मौलवी हो, या पोप पादरी।
सब मत में, भाव गान में, भगवान तुम्हीं हो।। ५।।

हर ऋतु में, हर दिशा में, दिन रात, सुबह शाम।
बस्ती में, वो वीरान में, भगवान तुम्हीं हो।। ६।।

इस लोक में, परलोक में, या जन्म मृत्यु में।
धरती में, आसमान में, भगवान तुम्हीं हो।। ७।।

हर नाम में, हर रूप में, हर रंग हर ढंग में।
पथ में, पथिक के ज्ञान में, भगवान तुम्हीं हो।। ८।।

प्रेरणागीत

तुम्हें आत्मवान हो जाना है।।
तन का अभिमान हटाना है।।

भेद भिन्नता ममता तज कर समता को अपनाना है।
समता में ही नित्य शान्ति है, नहीं विषमता लाना है।। १।।

आते कठिन विघ्न कितने ही, उनसे प्राण बचाना है।
देख देखकर पग धरना है, कहीं न ठोकर खाना है।। २।।

इधर-उधर कुछ भी न देखना, सुनना कुछ न सुनाना है।
केवल अपने सत स्वरूप में, मन की सुरति जमाना है।। ३।।

काम, क्रोध, लोभादि, प्रबल खल, इनके वेग मिटाना है।
तृष्णा तृप्त नहीं होती है, उससे पिण्ड छुड़ाना है।। ४।।

सुख का भोगी दुःख पाता है, यह मन को समझाना है।
अपना नहीं जगत में कुछ भी भ्रम से ही सुख पाना है।
ठहरो 'पथिक' सत्य चेतन में, असत् से प्रीति हटाना है।। ५।।

त्यागी होने के लिये

यदि पार होना चाहते हो तो सर्व-संग का त्याग कर असंग हो जाओ। यदि डूबना चाहते हो तो अपने से भिन्न देहादिक वस्तु, व्यक्ति का संग स्वीकार किये रहो।

यदि आत्मा का अनुभव करना चाहते हो तो सभी अवस्थाओं का त्याग करने पर, जो शेष रह जाता है, जिसका त्याग हो ही नहीं सकता, वही आत्मा है; उस आत्मा का बोध निष्क्रिय और असंग हुए बिना नहीं होता– ऐसा महर्षि वसिष्ठ का भी वचन है।

सर्व त्यागी होना चाहते हो तो वाह्य वस्तुओं को छोड़ने की न सोचो, प्रत्युत सब चाहों इच्छाओं का बीज जो मन है– उसका ही त्याग करो। मन का त्याग करने पर सब का त्याग पूर्ण हो जाता है। सर्वाधार परमात्मा में सब कुछ को अर्पण करने से भी पूर्ण त्याग हो जाता है। जो युवावस्था में सर्व-संग का त्यागी होता है वह शीघ्र ही परमपद प्राप्त करता है।

यदि स्थायी परम शान्ति अथवा परम भक्ति चाहते हो तो त्याग करने के पश्चात् पुनः पुनः सर्व त्याग के लिये तत्पर रहो, क्योंकि जो कुछ नहीं लेता उसे सब कुछ दिया जाता है। सब कुछ का त्याग करने पर त्यागी की सेवा में सभी सुन्दर वस्तुएं उपस्थित की जाती हैं। अनेकों त्यागी असावधानी के कारण त्याग करने के पश्चात् पुनः रागी बनते देखे गए हैं।

कोई मानव मिले हुये का यदि त्याग नहीं करता तो वह स्वयं प्रत्येक वस्तु द्वारा त्यागा जा रहा है; उसने जिसका भी आश्रय ले रक्खा है वह किसी न किसी क्षण उसी के बिना निराश्रित होगा। तुम सर्वस्व के त्यागी बनकर ही सर्वोत्तम पद– प्राप्त कर सकते हो।

यदि तुम मन से दुखी होकर उसका त्याग करना चाहते हो तो

वासना, कामना का त्याग करो; वासना कामना के त्याग के लिए, भोग से परिणाम का ज्ञान प्राप्त करो और भोगी जीवन होने का दुःख बढ़ाओ। ज्ञान प्राप्त होने के लिए बुद्धि को शुद्ध बनाओ, बुद्धि की शुद्धि के लिए परमात्मा के अनुरागी बनो और माया, मान, लोभ, मोह के त्यागी बनो। त्यागी महापुरुष के इस संदेश को स्मरण रक्खे कि त्याग करने के लिए तुम सदा स्वतंत्र हो और भोग के लिए सदा परतंत्र हो।

ध्यान रहे! सभी वस्तुओं तथा सम्बन्धियों एवं अवस्थाओं के प्रति रहने वाले राग का त्याग ही वास्तविक त्याग है।

मानवता को निष्कलंक रखना चाहते हो तो मन को बुद्धि विवेक को वशवर्ती बना लो। अपने सुख भोग के लिए कहीं हिंसा, निर्दयता, कर्तव्य-विमुखता, असावधानी अथवा धर्माचरण में प्रमाद न करो।

अहिंसा व्रत को निष्कलंक रखना चाहते हो तो त्याग और प्रेम को परिपूर्ण बना लो, क्योंकि सुख का रागी अवश्य ही द्वेषी होता है। अतः वह अहिंसा व्रत का पालन नहीं कर पाता। जो त्यागी और प्रेमी होता है वही सम्यक, कष्ट-सहिष्णु, क्षमाशील, विनम्र, धीर, गमभीर बुद्धिवाला है, वहीं हिंसा नहीं करता। सत्य, अस्तेय, निष्कपट भाव– ये सब मानसिक व्रत हैं।

तप को निष्कलंक रखना चाहते हो तो कहीं भी दुःख के बीच में सुख-भोग न चाहो, केवल शान्ति चाहो। सुख ही वस्तुओं अथवा व्यक्तियों के साथ भोगी बनाता है और शान्ति अपने अभिलाषी को त्यागी बनाती है। सुखोपभोग से दुर्बलता आती है, और तप से दुर्बलता दूर होती है। तपस्वी शक्तिशाली है, यदि उस शक्ति को सुखोपभोग में व्यय न करके दूसरों की सेवा में सदुपयोग करे तो वह शान्ति को प्राप्त करता है।

सेवा व्रत को निष्कलंक रखना हो तो करने के अभिमान से, लोभ से, क्रोध से, सुखासक्ति से, राग और द्वेष से सदा बचते रहो। जब कभी कुछ सेवा बन जाय तब स्मरण कर लो कि 'हमने अपने कर्तव्य पालन से अधिक कुछ भी नहीं किया है।' सेवा करते हुए अशुद्ध वचन, इन्द्रियों का असंयम, मनोविकार, निर्दयता और अपवित्रता से बचते रहो।

सदाचार को निष्कलंक रखना चाहते हो तो जो अपने लिए दूसरों

से तुम चाहते हो वही दूसरों के साथ करो। यदि समदृष्टि को निष्कलंक रखना हो तो किसी की निन्दा स्तुति न करो, किसी के गुण-दोष पर दृष्टि न रक्खो।

यदि अपनी महत्ता निष्कलंक रखना चाहते हो तो अधिकार तथा ऐश्वर्य न चाहो, स्वयं बड़े बनने की इच्छा न करो और नाशवान वस्तुओं में आसक्त न रहो। क्योंकि जो महान हैं वे आत्म संयमी, सन्तोषी, शान्त, विवेकी होते हैं, उनमें मान बड़ाई, धन और भोग की इच्छा नहीं होती।

भगवान के प्रति विश्वास को निष्कलंक रखना चाहते हो तो कभी मन में विषाद एवं शोक को स्थान न दो। परम प्रभु यदि समर्थ हैं, न्यायी हैं, सर्वज्ञ हैं तो ऐसा कुछ हो ही नहीं सकता जो न होना चाहिए। भगवान के न्याय विधान में कहीं भूल हो ही नहीं सकती।

भगवान की उपासना को निष्कलंक रखना चाहते हो तो कभी भी अपने को उपास्य देव से भिन्न न समझो। उनसे अपने लिए कुछ न मांगो। बुद्धि को निरंतर उन्हीं के निकट रक्खो।

अपने ज्ञान को निष्कलंक रखना चाहते हो तो राग-द्वेष, भय, चिन्ता, मोह, मिथ्या आग्रह, संशय, विपर्यय को हृदय में स्थान न दो। हर्ष और शोक के अवसर पर मन को न डूबने दो। ध्यान रक्खो! सन्त सद्गुरु के इन वाक्यों को– जिसकी वृत्तियां रुक गई हैं, जिसकी प्रीति संसार में नहीं रह गई है, जो अनुकूल प्रतिकूल का स्मरण नहीं करता है, यही ज्ञानी की सिद्धि है। दृश्य को अदृश्य करना, अदृश्य में दृष्टि को स्थिर रखना, भी ज्ञानी की सिद्धि है।

ज्ञान को निष्कलंक रखने के लिये जिसकी सत्ता नहीं है, उससे विरक्ति में और जिसका कभी अभाव नहीं है उससे अनुरक्ति में कहीं अन्तर न आने दो।

ज्ञान को निष्कलंक रखना चाहते हो तो अपने प्रेम पात्र की प्रसन्नता के लिये श्रृंगार तो करो पर वस्तुओं के रागी न बनो, सुन्दरता का गर्व न आने दो, स्नेही से ममता रक्खो पर मोह न आने दो; सेवा करो पर कुछ बदला न चाहो, अभिमान न आने दो; अनुरागी बनो पर कामना न उठने

दो; सुख का आस्वादन करो पर इच्छा न रक्खो; देह की रक्षा करो पर अहं की पुष्टि न होने दो; जगत में रहो पर माया में मोहित न बनो; ज्ञान को पूर्ण करो पर ज्ञानी न बनो।

यदि तुम अपनी दैवी सम्पत्ति अर्थात् साधुता को निष्कलंक रखना चाहते हो तो किसी दुर्जन के दुर्व्यवहारों, दुराचारों के प्रति असहयोगी बने रह कर अहिंसात्मक प्रयोग करो। उसके दुराग्रह दुर्नीति का प्रतिरोध करो पर स्वयं उसी के समान कोई कर्म न करो। निष्क्रिय रह कर विरोध करो। किसी क्रूर कर्मी मदोन्मत्त की आज्ञा भंग करो पर विनयी बने रहो। कहीं भी क्रोध, लोभ, अभिमान, कटुता, चंचलता न आने दो।

यदि तुम अपने त्याग को निष्कलंक रखना चाहते हो तो संसार में अपने चारों ओर कितना ही सुन्दर कुछ देखो या सुनो परनतु मन में उसकी प्रीति की इच्छा न करो तथा जो कुछ तुम्हें अनायास मिल जाय उसके प्रति राग न होने दो। स्मरण रक्खो! मान, माया, भोग का मन में महत्व-आदर देते ही त्याग कलंकित हो जाता है। अपने आपके साथ संसार का कुछ भी स्वीकार न करना, कुछ भी न चाहना, कोई इच्छा ही न करना, कुछ भी अपना न मानना, शून्य घड़े की भांति अपने को खाली रखना सच्चा त्याग है।

भगवत् भक्ति को निष्कलंक रखना चाहते हो तो किसी भी सांसारिक वस्तु, व्यक्ति तथा सुख-भोग की लालसा मन में उत्पन्न ही होने न दो। किसी भी अन्य के स्मरण से भगवान का विस्मरण न होने दो। पूर्णता प्राप्त करो।

यदि अपनी मुक्तावस्था को निष्कलंक रखना चाहते हो तो अपने अंतःकरण में किसी अभाव की, किसी के वियोग की, किसी प्रकार के हानि की वेदना स्फुरित न होने दो। कहीं भी राग-द्वेष तथा इच्छाओं को स्थान ही न दो। वासना रहित होकर स्थिर रहो। अपनी आस्तिकता को निष्कलंक रखना चाहते हो तो कहीं भय तथा चिन्ता को स्थान न दो, अनेक की उपासना न करके एक की उपासना करो, एक के ही होकर रहो। जीवन के लिए किसी आधार की अपेक्षा न रक्खो।

अपने चरित्र को निष्कलंक रखना चाहते हो तो कभी मन में

अशुभ, अपवित्र, भावों और विचारों को स्थान न दो।

यदि अपने हृदय की सज्जनता, शुद्धता को निष्कलंक रखना चाहते हो तो सबसे **विनम्र होकर बातें करो,** गम्भीरता को चंचलता से कहीं विचलित न होने दो, **कभी प्रसिद्ध पुरुष की आलोचना न करो।** अपने ही समान सचेतन **मानव के प्रति आदर, पूज्य भाव रक्खो।** किसी से पाप, अपराध बन जायें तो उसके प्रति **सहानुभूति या दयापूर्वक** उपेक्षा भाव रक्खो; जो सन्मार्गगामी नहीं हैं उनसे भी **घृणा न करो।** कठिन से कठिन परीक्षा में भी कटुता न आने दो, **कटु शब्दों का प्रयोग न करो। मोक्ष से क्रोध** को, धैर्य से उपहास को, प्रेम से द्वेष को जीत लो।

यदि तुम अपने जीवन में प्रेम को निष्कलंक रखना चाहते हो तो अपने सुख की, अपनी रुचि पूर्ति की कामना को स्थान न दो, अपने प्रेमास्पद की रुचिपूर्ति में ही अपनी रुचि को लीन कर दो। निष्कामता को ही प्रेम का सौन्दर्य समझो।

गीत

कृपा प्रभु की है अहंकार देख लेते हम।
इसके दिखते ही मुक्ति द्वार देख लेते हम।।

देखने वाले हैं हम कौन मौन होने पर।
स्वरूप नित्य निर्विकार देख लेते हम।।

मन के माने हुए सुख दुख हैं सभी बन्धन हैं।
मोह के मिटते ही उद्धार देख लेते हम।।

किसी भी वस्तु से ममता तभी मिटती है जब।
अपना कुछ भी नहीं अधिकार देख लेते हम।।

प्रकृति के पार प्रभु को तभी समझ पाते जब।
अपना माना हुआ संसार देख लेते हम।।

ज्ञान की दृष्टि से कण-कण में और क्षण-क्षण में।
जड़ में चेतन का चमत्कार देख लेते हम।।

पथिक संदेश है विश्राम तभी मिलता जब।
परम प्रियतम को मन के पार देख लेते हम।।

गीत

हम सब को इक दिन जाना है इस जग में आके देख लिया।
कुछ दिन तक ही रह पाना है घर-घर में जाके देख लिया।।

ऐसा कोई अब तक न मिला जो आकर फिर गया न हो।
ये मूरख मन रहना चाहे, इसको समझा के देख लिया।।

भोगी जन तो वाणी के मधुर, मन के कठोर ही दिखते हैं।
प्रेमी योगी विरले कोई यह खोज लगा के देख लिया।।

अपना माना था जिसको भी, वह कोई अपना रह न सका।
हम भी तो किसी के हो न सके, कुछ समय बिताकर देख लिया।।

हम भी तो धन की मान भोग की, पूर्ति चाहते आये हैं।
तृष्णा की आग न बुझती कभी, बहुतेरा बुझा के देख लिया।।

जब तक भीतर से त्याग न हो, कामना अहंता ममता का।
तब तक सन्यास नहीं होता, सब वेष बना के देख लिया।।

जब तक कि आत्मा निश्चल, संतुष्टि तृप्ति दृढ़ प्रीति न हो।
तब तक विश्राम नहीं मिलता, सब नियम निभा के देख लिया।।

सब दौड़ रहे हैं जिधर, उधर से लौटने वाले कहते हैं।
जो कुछ भी मिला वह रह न गया, दुनियां को रिझा के देख लिया।।

जिस अमृतत्व को खोज रहे थे, इधर-उधर मर कर जीकर।
हम पथिक उसे अपने में अहं का परदा उठा के देख लिया।।

असावधान रहने वालों के प्रति

यदि तुम अपने जीवन यात्रा में पूर्व पापों के बिना ही मिलने वाले अनेकों प्रकार के कष्टों से बचना चाहते हो तो सर्वत्र सावधान रहने की योग्यता प्राप्त कर लो, जो कुछ कर्म करो सावधान होकर करो।

सावधान शब्द का अर्थ तो कोई भी शिक्षित व्यक्ति बता देता है किन्तु सावधान रहने का जो रहस्य है– उसका बोध किसी विरले ही बुद्धियोगी संयमी के जीवन को देखकर होता है। हमें इस प्रकार के **समुन्नत जीवन से** ही सावधान रहने की प्रेरणा मिली है।

जो मानव जितना अधिक सावधान रहकर कर्म करता है, उतना ही अधिक शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से बचता रहता है, अनेकों पापों अपराधों से दूर रहता है, साथ ही सावधान रहने के कारण ही जो कुछ करता है– पुण्य-कर्म, शुभ-कर्म, कर्तव्य-कर्म ही करता है, अशुभ, अनावश्यक, असुन्दर, तुच्छ कर्म नहीं करता।

सावधान होकर जब हमने अपने जीवन का कुछ अध्ययन किया तो बहुत बड़े लाभ की बात यही विदित हुई कि वास्तव में हमारे जीवन में जितने भी दुःख कष्ट आये हैं वह अपने ही पूर्व कृत पाप कर्मों के फलस्वरूप आये हैं, परंतु सहस्रों कष्ट तो हमें अपनी असावधानी के कारण ही भोगने पड़े हैं।

सावधान न रह सकने के कारण ही हम इतनी अधिक बार गिर चुके हैं, इतनी अधिक चोटों से आहत हो चुके हैं, हानियां उठा चुके हैं– जिनकी गणना नहीं वरन् हमसे अनेकों पाप, अपराध, हिंसात्मक कर्म सावधान न रहने के कारण ही बन चुके हैं। इसी प्रकार अपने चारों ओर मानव समुदाय को हम असावधानी का दुष्परिणाम भोगते हुए देख रहे हैं, उनमें अभागे निर्धन ही नहीं प्रत्युत भाग्यवान, धनवान, विद्वान, बलवान व्यक्ति भी असावधानी के कारण बड़े-बड़े कष्टों के मार्ग पर चल रहे हैं।

सावधान न रहने के कारण ही कोई फिसल कर गिर जाता है, कोई सीढ़ियों पर लुढ़कते हुए नीचे आ जाता है, किसी की लम्बी धोती पैर में फंस जाती है और वह मुंह के बल धराशायी हो जाता है, किसी का हाथ टूटता है, किसी का पैर, किसी के दांत टूटते हैं, किसी की नाक फूटती है,

कोई असावधानी के कारण ही अपना हाथ कुचल लेता है, पैर काट लेता है, अंगुली में सुई चुभो लेता है, आंख में चोट मार लेता है, कोई अपना अंग ही जला लेता है, कोई साइकिल से टकरा जाता है, कोई अपनी गाड़ी से किसी को कुचल देता है। कोई असावधान होकर चलने से कुचल भी जाता है। असावधान रहने पर ही सावधान चोरों, गिरहकटों द्वारा यात्रियों की जेबें कट जाती हैं, गठरियां उठ जाती हैं, ट्रेन से बड़े-बड़े बक्से उठ जाते हैं, इससे भी अधिक भयानक हानियां चोरियां जो कहने योग्य नहीं, असावधानी रहने के कारण ही होती हैं।

कहीं-कहीं सन्तरी, या सैनिक तथा सेनापति और सम्राट भी असावधानी से ही अपना सुख, वैभव, ऐश्वर्य, सर्वस्व तक खो बैठते हैं।

सावधान न रहने के कारण अनेकों बालक, युवक, विद्यार्थी, शिक्षित, अशिक्षित, नारी या पुरुष सभी व्यक्ति नाना प्रकार के कष्ट भोगते रहते हैं।

सावधान न हो सकने पर ही बुद्धिमती किन्तु स्वच्छन्द बालिकायें तथा नारियां शिक्षालयों में, गृह में, वन में, यात्रा में, विश्राम स्थलों में (उन धूर्तों से, विषय-लम्पटों से– जो अपनी कामना पूर्ति के लिए सावधान रहते हैं) ठगी जाती हैं, धोखा खाती हैं, अंत में सब कुछ खोकर, पश्चाताप से संतप्त होती रहती हैं।

यात्री के मार्ग में अनेकों गर्त (गड्ढे) रहते हैं, ठोकरों के, फिसलने के, टकरा जाने के स्थान रहते ही हैं, इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी के भाग्य पथ में सभी कुछ रहता ही है, फिर भी जो सावधान यात्री हैं, वह गर्त को लांघ कर, रपटन के स्थान में पैर जमाकर, ठोकर के ऊपर पैर रखकर टक्करों को बचाकर चलता जाता है और असावधान यात्री जहां तहां गिरता है, ठोकर खाता है, टकरा जाता है।

सावधान मानव आस्तिक होता है। धर्म-परायण न्यायी होता है। आज कोई लाखों में एक धर्मनिष्ठ न्यायी दिखायी देते हैं। एक मनुष्य दूसरे प्राणी के प्रति अन्याय करे, चोरी, बलात्कार करे, यह इतनी आश्चर्य की बात नहीं है, जितनी कि संसार के स्वामी की वस्तुओं को अपनी मान कर लोभी, मोही, अभिमानी बनना आश्चर्य की बात है।

संसार में जितने जीव लोभी, मोही, अभिमानी हैं, वे सब दुराग्रही हैं, अन्यायी हैं, चोर हैं, क्योंकि जो वस्तु उन्हें मिली हैं, उसे अपनी मान बैठे हैं और उस दाता के नियम, विधान से विरुद्ध चल कर स्वयं ही दण्ड का दुःख भोगते हैं।

जिसकी धरती में ये प्राणी रहते हैं, जिसके बनाये अन्न से, जल से, अग्नि तथा वायु से, जिसके प्रकाश से जीते रहकर दिन रात अपनी इच्छाओं की पूर्ति में रस लेते हैं, जिन मिली हुई वस्तुओं का कोई मूल्य भी नहीं देना पड़ता, जिनके बिना जीवन टिक भी नहीं सकता, ऐसे महान दान के दाता को भूल कर स्वयं स्वामी बनना, कर्ता, भर्ता बनना, ईश्वर की सृष्टि में अपनी निराली सृष्टि बनाकर 'मैं' का अहंकार दिखाना जीव का अन्याय ही तो है। यह तो अपने परमाधार परमात्मा की सृष्टि पर ही अधिकार जमा बैठा है, यद्यपि इस अन्याय का फल दण्ड भी मिल रहा है परन्तु वह समझ नहीं पाता कि इस चोरी के परिणाम में, अपना मानने के कारण ही लोभ, मोह, अभिमान रूपी बेड़ियों में वह जकड़ा हुआ है। जब तक यह जीव ईमानदार न्यायी न बनेगा, अपना मानना न छोड़ेगा, तब तक इन बन्धनों से कदापि छूट नहीं सकता। यह जीव की महान् असावधानी है।

कोई भी मनुष्य सावधान रहकर ही सद्गति, परमगति, परमशांति एवं मुक्ति और भक्ति प्राप्त कर सकता है। सावधान पुरुष ही दोषों का त्यागी, सेवा करते हुए तपस्वी, आत्म निरीक्षण करते हुए ज्ञानी और भोगों से विरक्त होकर निष्काम प्रेमी हो सकता है। सावधान होते ही जीवन में प्रगति का आरंभ होता है और परम लक्ष्य की प्राप्ति तक सावधान रहना पड़ता है।

जो सत्य लक्ष्य को देखते हुए, अपने कर्तव्य-कर्मों को पूर्ण करते हुए, सत्य धर्म से कहीं भी विमुख नहीं होता, वही सावधान पुरुष है।

वर्तमान समय में जिन प्रतिकूल घटनाओं को भोगते हुए हम अपना दुर्भाग्योदेय मानते हैं, वह भूतकाल में सावधान न रहकर किये हुए हमारे कर्मों का फल है, इसी प्रकार जब हम सावधान रहकर जितने अधिक शुभ कर्म करते हैं, उतना ही अधिक सुन्दर भाग्य का निर्माण भविष्य के लिये होगा।

जिनके जीवन से हम सबको सावधान रहने की प्रेरणा मिलती है वह सावधान पुरुष व्यर्थ चेष्टा में, बीती हुई घटनाओं के मनन में, या आगे क्या आयेगा– इसके चिन्तन में अपना समय नष्ट नहीं करते, वे ऐसे सुख के लिये या ऐसे सम्मान के लिये, ऐसे भोग लाभ के लिये क्रोध, कपट, हिंसा, चोरी, आदि अन्याय युक्त कर्म नहीं करते जिसका अंत दुःख में ही हुआ करता है। वे तो जगत से मिलने वाले सुखद वस्तुओं की चाह का ही त्याग करते हैं क्योंकि चाह ही जीव से सब कुछ करा लेती है।

सावधान पुरुष उस वस्तु को या उस व्यक्ति को अपना मान कर लोभी, मोही, अभिमानी नहीं बनते जो कि उन्हें परमेश्वर की प्रकृति से मिली है। इस विवेक के कारण ही वे प्राप्त अप्राप्त में सदा शान्त सम रहते हैं।

सावधान पुरुष सदा सनातन सत्य का ही आश्रय लिये रहते हैं, वे शाश्वत को ही परम लाभ जानते हैं। उसी के लिये पराधीनता से मिलने वले सुखों से विरक्त रहते हैं और अपने हृदय में क्षमा, दया, उदारता, तथा सेवा एवं सर्वहितकारी प्रवृत्ति को ही अपनाये रहते हैं। वे ऐसा कुछ करते ही नहीं जिससे कि दूसरों का अहित हो, क्योंकि उन्हें दूसरे के अहित में अपना ही अहित दिखता है और दूसरों के हित में अपना परम हित दिखता है, इस प्रकार के विवेक से उन्हें कहीं भी अपने त्याग तथा तप का अभिमान नहीं होता।

सावधान पुरुष विषम परिस्थिति में भी भयातुर, क्षुभित, कर्तव्य-धर्म से विचलित नहीं होते, वे लाभ होने पर सेवा करते हैं और हानि होने पर संतोष धारण करते हैं, विनम्र होकर बड़े-बड़े कष्टों को तप के भाव से सहन करते हुए प्रसन्न रहते हैं, दुःखद परिस्थिति में त्याग के बल से परमात्मा के प्रति अनुरागी होकर समस्त दुःखों से मुक्त रहते हैं।

हम सब लोग अथवा संसार के सभी प्राणी दुःख रहित सुख चाहते हैं, सभी श्रेष्ठ होना चाहते हैं, ज्ञानी, कमी यही है कि सभी प्राणी सावधान नहीं हैं ज्ञानी, गुरुजन, विरक्त महापुरुष, शास्त्रों, वेदों के प्रमाणों द्वारा सबको सावधान होने का सन्देश, आदेश, उपदेश देते रहते हैं, परन्तु कोई विरले ही मानते हैं और कोई-कोई सावधान हो पाते हैं। अपने ही समान

आत्म कल्याण चाहने वाले बुद्धिमान सज्जनों! सन्त सद्गुरु का सबसे प्रथम यही आदेश है, कि सावधान हो जाओ। जिस अवस्था में जहां कहीं जैसे भी हो, सावधान हो जाओ। शक्ति है, समय है, जीवन है, अब तुम सब कुछ का दुःख निवृत्ति के लिए सदुपयोग करो, सावधान होकर करो।

तुम अपने आगे बहुत ऊंचे स्थल पर दिखाई देने वाले बड़े-बड़े कामों में मोहित न बनो, प्रत्युत तुम्हारे समीप इस समय जो कार्य हों, चाहे वे कितने ही छोटे क्यों न हों, उन्हीं की पूर्ति के लिए सावधान रहो।

तुम इतने सावधान हो जाओ कि तुम्हारे द्वारा कहीं भी कुछ असुन्दर, अशुभ होवे ही नहीं और तुम सर्वत्र शोक, मोह, क्रोध, क्षोभ, भय, चिन्ता से मुक्त रहो।

जो कुछ भी तुम चाहते हो उसे सावधान होकर प्राप्त करो अर्थात् उसके लिये पूरा परिश्रम करो, कहीं भी छल कपट चोरी न करो। ईमानदारी से अपनी योग्यतानुसार प्रयत्न करो।

जो कुछ तुम्हें प्राप्त है, उसकी सावधान होकर रक्षा करो। यदि चोर तुम्हारी वस्तु चुराने में सावधान है तो उनसे अधिक तुम उसकी रक्षा की युक्तियों में सावधान रहो जब कि चोरी करने वाले इतने कुशल हो गये हैं कि कुछ क्षणों में ही जंजीरें, ताले तोड़ डालते हैं तब तुम उन छोटे-छोटे तालों पर विश्वास न करो, जो बन्दरों, कुत्तों और बिल्लियों के लिये ही काम आ सकते हैं।

इस समय संचय करने के लोभवश अन्यायपूर्वक, छल कपट पूर्वक धन कमाते हैं। और धर्म दान में, सहायता में खर्च नहीं करते, तभी उसके चुराने वाले भी अधिक पैदा हो गये हैं। जहां पर जज (न्यायाधीश) न्याय करता है, वहीं पर जल्लाद ही अपराधी को फांसी आदि की सजा देता है।

तुम धन कमाने में सावधान रहो, न्यायपूर्वक उपार्जन करो, और दान धर्म में व्यय करते रहने के लिये सावधान रहो, लोभवश संचय ही न करते रहो। अन्यायी की कमायी किसी अन्यायी भोगी के ही अधिकार में प्रायः आती जाती रहती है।

अपने ऊपर धन खर्च करने में सावधान रहो, यदि कुछ दिन भांति-भांति के स्वादिष्ट भोजनों में रस ले लिया है, कुछ चमकीले

तड़क-भड़क के वस्त्रों से इच्छा पूरी कर ली है तो अब सावधान हो जाओ, और अपने हिस्से से उन दुखियों को देना आरंभ करो, जिन्हें सूखी रोटी भी पेट भर नहीं मिलती है। पुराने कपड़े भी कहीं शीत मिटाने भर के लिये नहीं मिलते हैं। इस प्रकार के अभाव पीड़ितों की सहायता करने के लिये अपनी इच्छायें, कामनायें (जरूरतें) कम करो, उचित निर्वाह का पक्ष लो, मर्यादानुसार शरीर को पुष्ट रखने के लिये, स्वस्थ रखने के लिये भोजन वस्त्र का उपयोग करो, केवल स्वाद का पक्ष लेकर भोजन न करो और अभिमान बढ़ाने के लिये श्रृंगार करके अपनी सुंदरता सिद्ध न करो, क्योंकि इसी के लिये पचासों सैकड़ों प्रकार के वस्त्रों का संग्रह करना पड़ता है।

तुम सावधान होकर अपने मन को, वाणी को, बुद्धि को, ज्ञान को, प्रेम को और समग्र व्यवहार को इतना पवित्र सुंदर बना लो कि जिसे देखकर सभी को तृप्ति हो, शीतलता हो। शरीर को सजाकर ऊपर की चमक-दमक से रिझाने में तो वेश्यायें भी कुशल होती हैं परंतु जीवन को सद्गुणों, सद्भाओं, सद्कृत्यों से सुंदर बनाने में कोई-कोई सावधान व्यक्ति ही निपुण दीखते हैं।

तुम जिससे जो कुछ कह दो, उसे पूरा करने में सावधान रहो। किसी से मिलने जाओ तो सावधान होकर मिलो, गंभीरतापूर्वक वार्ता करो और सुनो, जिसके समीप जाओ उसके अवकाश का समय पहले से ही जान लो, बैठने में उसकी रुचि और चलने में अपनी रुचि की प्रधानता रक्खो, कार्य की वार्ता पूरी होने पर व्यर्थ बैठ कर किसी को संकोच में न डालो।

जब मन्दिरों में, सभाओं में, बड़े-बड़े भवनों में जाओ, अपने साथ का छाता, जूता, झोला, साइकिल आदि को सुरक्षित स्थान में रक्खो। जो लोग असावधान होकर जहां तहां भीड़ में वस्तुओं को छोड़ देते हैं, वही चोरी हो जाने पर पश्चाताप करते हैं। तुम्हारे साथ साइकिल हो तो मजबूत ताला रक्खो और किसी आधार से मिलाकर ताला डालो, जूतों के बीच रक्षा का प्रबन्ध न हो तो सैकड़ों जूतों के बीच में एक जूता कहीं छोड़ो तो दूसरा उससे दूर जाकर छोड़ो। किसी तीर्थ में घाट में स्नान करो तो अपने सामान की ओर मुख करके स्नान करो।

यदि तुम धोखा नहीं चाहते हो तो स्वार्थी की सेवा में, शत्रु के सम्मान से, स्त्री के आंसुओं से, उच्च पदाधिकारियों के मधुर अनुकूल शब्दों से, अपने से ऊंचे धनी-मानी के आदर से सावधान रहो, क्योंकि तुम्हारी कल्पना के अनुसार सदा यह तुम्हारे अनुकूल न मिलेंगे। इसलिये इन पर विश्वास न करो, इनके भावों को, मुख मुद्रा को परखते रहो। किसी भद्र पुरुष की ओर से आदर, प्यार पाकर अपने को गुणवान श्रेष्ठ न मान बैठो।

तुम स्वयं सेवा करते हुए दूसरों का आदर सम्मान करते हुए सावधान रहो, कहीं तुम्हारे मन में सेवा, सम्मान देने के पीछे मान, माया तथा भोग लेने की चाह तो अपना मुख फैलाये नहीं बैठी है। जब तुम साधन भजन में, तप तथा त्याग में आगे बढ़ो तब सावधान रहो, कहीं न करने वालों को देखकर तुम्हें बहुत अधिक करने का अहंकार तो प्रबल नहीं हो रहा है। सावधान रहकर तुम उस प्रभु प्रदत्त प्रेम को– जो परम प्रभु से विमुख और संसार के सम्मुख होते ही काम बन गया है उसे पुनः संसार से विमुख होकर परमात्मा की ओर मोड़ दो। अपनी रुचि पूर्ति के लिये संसार को चाहना काम है; भगवान की प्रसन्नता के लिये अपनी रुचि का तथा संसार का त्याग करना प्रेम है।

तुम इतनी दूरदर्शिता बढ़ा लो, इतनी योग्यता प्राप्त कर लो कि इस संसार से ही सावधान रहो। जिस संसार की ओर दौड़ने वाले करोड़ों प्राणियों को दुःखान्त सुख तो कभी-कभी मिला परन्तु स्थायी परम शान्ति किसी को कभी नहीं मिली, न मिलेगी, उस संसार के भोग सुखों से सावधानी पूर्वक विरक्त हो जाओ।

सावधान होकर ही तुम्हें शरीर, इन्द्रियां, मन के संयोग से ऊपर उठने के लिये बुद्धि योगी होना है; बुद्धि योगी होने पर ही तुम कुशल कर्मी, शुभ कर्मी और अंत में निष्कामी हो सकोगे।

तुम सावधान होकर ही इन्द्रिय ज्ञान की भ्रान्ति जगत, प्रपंच, मोह, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु की सीमा को पार कर सकोगे।

तुम सावधान होकर ही, हानि-लाभ, अनुकूल-प्रतिकूल, आदि सभी प्रकार के द्वन्द्वों में, त्रिगुण प्रकृति की विषमता में, अथवा लोभी,

मोही, अभिमानी, कठोर अन्यायी व्यक्तियों के बीच में अपने को शान्त सम रख सकोगे, असावधानी दोष के कारण ही लोक परलोक दोनों ही अंत में दुःखकारी हो जाते हैं, सावधान होने पर दोनों ही हितकारी बन जाते हैं।

सावधान होकर ही तुम जड़ से विमुख होकर चैतन्य की ओर अर्थात् देह से आत्मा की ओर, जगत से जगदाधार की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, द्वेष और मोह से प्रेम की ओर, संयोग-वियोग से योग की ओर, सुख-दुःख से आनन्द की ओर, काम से राम की ओर, मृत्यु से मुक्ति की ओर, सीमित से असीम की ओर जा सकोगे और पा सकोगे। तुम ऐसी वस्तुओं को अपना आधार न मानो, उन पर अपनी प्रसन्नता निर्भर न रक्खो जो तुम्हारे समीप से चाहे जब कभी हटा ली जा सकती हैं क्योंकि वह तुम्हारी नहीं हैं, कुछ समय के लिए ही तुम्हें मिली हैं। तुम उस परमाधार को जानकर अभय हो जाओ, निश्चिन्त हो जाओ जो तुम्हारा कभी त्याग नहीं करता, उस सत्य को चाहे परमात्मा कहो, या ब्रह्म कहो, या परमेश्वर कहो, या कोई और नाम से पुकारो, केवल उसी को अपना मानो अन्य कुछ भी अपना न मानो।

अपनी समझ से सावधान रहते हुए भी जब कभी तुम्हारा हृदय दुःखी हो या किसी संयोग से, सम्मान से या लाभ से अत्यधिक हर्षित हो जब अपनी छिपी हुई असावधानी को खोज निकालने में देर न करो। जहां तक तुम अपने भीतर राग, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, भय, चिंता, आलस्य, प्रमाद की वृत्तियां देखो, वहां तक अपने को पूर्ण सावधान समझने की भूल न करो, वरन् उस असावधानी को दूर करो जिसके कारण यह वृत्तियां पोषित होती हैं।

यदि ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो विवेक को अपना गुरु बना लो और श्रद्धा तथा प्रेम पूर्वक अधिकार के अनुसार सब की सेवा करो। विवेक के अतिरिक्त कहीं देह को गुरु न मान बैठना। विवेक रूपी गुरु के समीप रहकर जगत का तथा अपने जीवन का अध्ययन करना चाहिये। इस विधि से ही तुम्हें पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा।

यदि गुरु होना चाहते हो तो अपने चित्त को चेला बना लो। संसार में जिन्होंने गुरु पद प्राप्त किया है, उन्होंने अपने चित्त को चेला बनाने पर

ही किया है। चित्त को चेला (शिष्य) बना लेने पर वह गुरुता आ जाती है जिसके कारण संसार की कोई वासना, कामना गुरुत्व के योगी हो हिला-डुला नहीं पाती।

सावधान होकर रहने का सरल अर्थ है, कहीं आलसी, प्रमादी, तथा कर्तव्य विमुख न होना, विकारों पर विजय प्राप्त करते रहना, हानि न होने देना, कहीं भूल न करना।

सावधान रहने का दूसरा अर्थ यह है कि भोग, सुखों से विरक्त होकर ज्ञान को पूर्ण करना, निष्काम प्रेम को पूर्ण करना, संसार से असंग होकर मुक्ति और परमात्मा से अभिन्न होकर भक्ति प्राप्त करना। यही ज्ञान स्वरूप गुरु का आदेश, उपदेश है। सर्वत्र सावधान? सावधान?? सावधान???

गीत

जिसे हम खोजते थे वह है साथ मेरे
यह चिद आत्मा ही परम देवता है।
हर एक देह मन्दिर में यह प्रभु प्रतिष्ठित
इसी का बताया हुआ यह पता है।।

यही तो सभी प्राणियों का है जीवन
इसी से प्रकाशित यह अंतःकरण मन।
इसी में सकल विश्व जल-थल अनिल है
अनल से गगन से यही झांकता है।।

यही नाथ है जिसका अथ ही नहीं है
यही नेति जिसकी न इति ही कही है।
यह अव्यक्त ही व्यक्ति में व्यक्त होता
इसी की ही सत्ता से जग भासता है।।

मनुज मोह निद्रा में सोये हुए जो
किसी खोज में ही हैं खोये हुए जो।

है घेरे हुए सबको सुख-दुःख के सपने
जिसे गुरु जगाये वही जागता है।।

वही है प्रगट प्रभु जहां मैं नहीं है
यह मैं पन के रहते न मिलता कहीं है।
कृपा की किरण से जब अज्ञान मिटता
तभी यह चिदानन्द धन दीखता है।।

जगत में जो आता सदा रह न पाता
जो रहता सदा वह है न आता जाता।
यही एक अपना है अपने में ही है यह
हमको कभी भी नहीं भूलता है।।

'पथिक' का दुःखी होना ही प्रार्थना है
सुखों में सदा स्तुति वन्दना है।
दिखाना नहीं कुछ सुनाना नहीं कुछ
परम प्रभु से सबको सुलभ पूर्णता है।।

गीत

वे धन्य हैं श्रीमान जो भगवान की सुनते हैं।
वे बड़े भाग्यवान जो भगवान की सुनते हैं।।

भगवान की न सुनकर जो ज्ञानी बन रहे हैं।
जो त्यागी तपस्वी योगी ध्यानी बन रहे हैं।।
जो भक्त विरागी धर्मी दानी बन रहे हैं।
जो हैं नहीं वह होने के अभिमानी बन रहे हैं।
उनको ही होता ज्ञान जो भगवान की सुनते हैं।। वे धन्य....

जब तक कि इन्द्रियों से विषयों का भोग होता।
भोगी के तन में मन में अनचाहा रोग होता।
संयोग जिसका होता उसका वियोग होता।
जो नित्य निरन्तर है उसका ही योग होता।

उनको ही सुलभ ध्यान जो भगवान की सुनते हैं।। वे धन्य...

यह जीव जन्मते ही परिवार की सुनता है।
कुछ प्यार की सुनता है तिरस्कार की सुनता है।
अभिमानी बन के अपने अधिकार की सुनता है।
भगवान से विमुख हो संसार की सुनता है।
सम्मुख वही विद्वान जो भगवान की सुनते हैं।। वे धन्य.....

भगवान की जो सुनते वह पाप से बच जाते।
निर्द्वन्द रहते जग में सन्ताप से बच जाते।
वह व्यर्थ के प्रलाप से विलाप से बच जाते।
आनन्द में रहते हैं, अभिशाप से बच जाते।
वह पथिक सावधान हो भगवान की सुनते हैं।। वे धन्य....

गीत

कभी सन्तों के सद्विचार देखता हूं मैं।
कभी प्रपंच का विस्तार देखता हूं मैं।।
सुना है सब विभूतियां उन्हीं अनन्त की हैं।
उन्हीं को सर्वमय साकार देखता हूं।।
सिन्धु में विन्दु की तरह मैं हूं उनका उनमें।
विमुख होकर ही अहंकार देखता हूं मैं।।
मेरा कुछ भी नहीं अपना उन्हीं का सब कुछ है।
अपने प्रियतम का ही संसार देखता हूं मैं।।
मेरे सर्वस्व वही हैं अब और क्या चाहें।
अपना तो उनपै ही अधिकार देखता हूं मैं।।
चाहे जब चाहे जहां उनको जो कुछ भी माने।
सदा निज भावनानुसार देखता हूं मैं।।
दया है उनकी जब मन चाही पूरी होती है।
कृपा है जब कि तिरस्कार देखता हूं मैं।।

उन्हीं की दी हुई नजर से अपने जीवन में।
दया कृपा को बार-बार देखता हूं मैं।।
क्या कहूं क्या दिखा के क्या सिखा रहे हैं अब।
पथिक प्रभु को ही आर पार देखता हूं मैं।।

गीत

मानव प्रभु गुण गाते न क्यों तुम।
सत् की शरण में आते न क्यों तुम।। १।।

जिनको तुम अपना समझे हो, सदा काम वह आ न सकेंगे।
गुरु विवेक बिन भव बन्धन से कोई तुम्हें छुटा न सकेंगे।।
मन का मोह मिटाते न क्यों तुम।
मानव प्रभु गुण गाते न क्यों तुम।। २।।

जैसा भी चिन्तन होता है चित्त उसीमय बन जाता है।
जिसकी चाह प्रबल होती है, प्राणी उसको ही पाता है।
सत्य से प्रेम बढ़ाते न क्यों तुम।
मानव प्रभु गुण गाते न क्यों तुम।। ३।।

जिसकी सत्ता में सब प्राणी इच्छित सुख पाते रहते हैं।
जिसकी याद दिलाने के हित अगणित दुःख आते रहते हैं।।
दुःख से लाभ उठाते न क्यों तुम।
मानव प्रभु गुण गाते न क्यों तुम।। ४।।

काम क्रोध मद अहंकार से किसका हृदय नहीं जलता है।
भोगी बनकर कौन जगत में अपने हाथ नहीं मलता है।।
पथिक त्याग अपनाते न क्यों तुम।
मानव प्रभु गुण गाते न क्यों तुम।। ५।।

किसी के काम जो आये उसे इंसान कहते हैं...

किसी के काम जो आये उसे इन्सान कहते हैं।
पराया दर्द अपनाये उसे इन्सान कहते हैं।।

कभी धनवान है कितना कभी इन्सान है निर्धन
कभी सुख है कभी दुःख है इसी का नाम जीवन है
जो मुश्किल में न घबराये उसे इन्सान कहते हैं।।

यह दुनिया एक उलझन है कहीं धोखा कहीं ठोकर
कोई हँस हँस के जीता है, कोई जीता है रो-रो कर
जो गिर कर फिर संभल जाये उसे इन्सान कहते हैं।

अगर गलती रूलाती है तो राह भी दिखाती है
बशर गलती का पुतला है यह अक्सर हो ही जाती है
जो गलती करके पछताये उसे इन्सान कहते हैं।

अकेले ही जो खा-खा कर सदा गुजरान करते हैं
यों भरने को तो दुनिया में पशु भी पेट भरते हैं
जो बन्दा बाँट कर खाये उसे इन्सान कहते हैं।

हम सब मिलके आये दाता तेरे दरबार।

हम सब मिलके आये दाता तेरे दरबार।
भरदे झोली सब की तेरे पूर्ण भण्डार।।

होवे जब सन्ध्या काल निर्मल होके तत्काल
अपना मस्तक झुका के, करके तेरा ख्याल
तेरे दर पर आके बैठे सारा परिवार।।

लेके दिल में फरियाद करते हम तुम को याद
जब हो मुश्किल की घड़ियां मांगे तुम से इमदाद
सब से बढ़के ऊँचा जग में तेरा दरबार।।

चाहे दिन हो विपरीत, होवे तुझ से ही प्रीत
सच्ची श्रद्धा से गावें तेरी भक्ति के गीत
होवे सब का प्रभु जी, तेरे चरणों में प्यार।।

तू है सब जग का वाली करता सब की रखवाली
हम हैं रंग रंग के पौधे, तुम हो हम सब के माली
"पथिक" बगीचा है यह तेरा सुदंर संसार।।

अन्य पुस्तकों की सूची

1. पढ़ के देखो
2. आप क्या चाहते हैं
3. मुक्ति-युक्ति
4. मानस में अपने को देखो
5. सन्तमन
6. पथिकोद्गार (प्रथम)
7. पथिकोद्गार (द्वितीय)
8. पथिकोद्गार (तृतीय)
9. प्रवचन सार
10. ज्ञान में देखो
11. दृष्टि और दर्शन
12. सत्संग नित्य सुलभ
13. ध्यान में देखो
14. मुक्ति तंत्र
15. अटको नहीं
16. आत्म निरीक्षण भाग-1
17. आत्म निरीक्षण भाग-2
18. अन्त में अनन्त
19. औषधि संग्रह
20. आदर्श जीवन की आधार शिला
21. कर्तव्य दर्शन भाग-1
22. कर्तव्य दर्शन भाग-2
23. गुरु वाक्य भाग-1
24. गुरु वाक्य भाग-2
25. गुरु वाक्य भाग-3
26. ठहरो और देखो
27. दिव्य मंत्रणा
28. नारी और दिव्य दर्शन
29. निर्णय भाग-1
30. निर्णय भाग-2
31. पथिक प्रबोध
32. पथिक संदेश
33. पथिक प्रश्नोत्तरी भाग-1
34. पथिक प्रश्नोत्तरी भाग-2
35. पत्रोपदेश
36. परमानन्द की ओर
37. परमार्थ के पथ पर
38. पूर्णता की ओर
39. परिणाम दर्शन भाग-1
40. परिणाम दर्शन भाग-2
41. यथार्थ दर्शन
42. प्रज्ञा में दर्शन
43. कल्याण निधि
44. विविध योग भाग-1
45. विविध योग भाग-2
46. संत दर्शन
47. समझने की बातें भाग-1
48. समझने की बातें भाग-2
49. स्मरणीय भाग-1
50. स्मरणीय भाग-2
51. सद्गति प्रेरणा
52. साधक और सिद्धि
53. सद्शिक्षा
54. साधकों से
55. साधन मीमांसा
56. असत् से मुक्ति
57. पथिक पाथेय भाग-1
58. पथिक पाथेय भाग-2
59. संत प्रवचन सार
60. शुभ और सुंदर
61. आहार संशोधन
62. पंच सकार योग
63. सत्यान्वेशण
64. यह भी समझो
65. विचार संचय
66. सावधान भाग-१
67. सावधान भाग-२
68. ज्ञान यज्ञ का प्रसाद
69. वैद्य की दवा और दुआ
70. मिट्टी की महिमा
71. वियोगिनी
72. जीवन निर्माण की साधना
73. जागृति संदेश
74. सुलभ उपचार
75. सुन्दर जीवन
76. प्रकाश में